

राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली

बंगला देश

स्वतंत्रता के बाद

क्षितीश

मूल्य : आठ रुपये (8 00)

BANGLA DESH : Swatantrata Ke Bad
(Travelogue), by Kshitish

मेरे दरवेश

मेरा एक मित्र है।

नाम उसका कुछ भी हो, मैं उसे दरवेश कहता हूं। दर-दर···अनेक वेशों में मैंने उसे देखा है।

आज जब पुस्तक की भूमिका लिखने लगा हूं तो उसकी याद आने लगी है।

न जाने किन बियाबान जंगलों में, तूफान-ग्रस्त समुद्र-तटों पर, बर्फ ढके किन पहाड़ों की चोटियों पर हिम-मानव की तरह उसके चरण चिह्न खोजियों को विकल कर रहे होंगे! हो सकता है, वह किसी शीत या उष्ण, आसन्न अथवा पराभूत, युद्ध की लपटों के आसपास चक्कर काट रहा हो? कौन जाने दक्षिण अफ्रीका की बीहड़ वनानियों ने उसे मोह लिया हो!

मैं उसकी याद में बेसुध हुआ जा रहा हूं :

नहीं आती तो उसकी याद महीनों तक नहीं आती,
मगर जब याद आते हैं तो अक्सर याद आते हैं।।

सोचता हूं, दरवेश आज मेरे पास होता, तो पूछता—"तुम्हारी बंगला देश वाली यात्रा का क्या हुआ?"

मेरे प्रेरक दरवेश! मैं जितना तुम्हें प्यार करता हूं, उतना ही तुमसे डरता भी हूं। यह ठीक है कि मैंने भी कैलाश से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कोहिमा तक इस महादेश की खाक छानी है। भले ही तुम्हारी तरह न सही पर भारत के गांव-गांव, नगर नगर, पर्वत-पर्वत, नदी-निर्झर के हर मोड़ से अपने को जोड़कर, पत्थर-पत्थर से, पेड़ पेड़ से, खंडहर-खंडहर से, गिरते ढूहों और ढहते दिलों से मैंने कानाबाती की है।

नहीं कहता कि मैं इतिहास का सत्यशोधी हूं, नहीं कहता कि भारत माता के भूगोल पर मेरा भी कुछ उल्लेखनीय दावा है, परन्तु अपने छोटे-से जीवन के काफी क्षणों को मैंने यायावरी में जिया है, और गुनगुनाया है

जदि तोर डाक शुने केउ न आशे
तबे एकला चलो रे, एकला चलो रे।

प्रिय मित्र ! तुम भी मेरी तरह पत्रकार हो। मेरी तरह क्यो, मुझसे भी पुराने और समर्थ। 'सोनार बागला' की सुरभि माता के गर्भ से ही तुम्हारे मन मे बसी है। कितनी सटीक थी तुम्हारी वह टिप्पणी—"भैया रे ! हम भारतवासी तो २५ वर्ष मे भ्रष्टाचार के इस स्तर तक पहुचे हैं, पर बगला देशवासी तो तीन वर्ष मे ही हमसे आगे बढ गए।"

ऐसे ही अनेक हीरक-वाक्य मेरे सुप्त मन के अन्धकार मे दिनो से उजाला करते रहे हैं। कभी-कभी मैं इस निष्कर्ष पर पहुचता हू कि हरेक चिन्तनशील मनुष्य अन्दर से दरवेश ही होता है।

बगभूमि चिरकाल से विद्रोह और क्रान्ति की जननी रही है। भारत महादेश का भाग्य उसके साथ बधा है। आज जब बगला देश चारो ओर आग की लपटो से घिरा है, तब मेरे दरवेश का मन फिर वही पहुच जाता है।

तो लो, तुम्हारी चाह और मेरा स्वप्न— आज मैं पाठको को समर्पित कर रहा हू। यह इतिहास होते हुए भी इतिहास नही, उपन्यास होते हुए भी उपन्यास नही। हा, पद्यबद्ध होता, तो शायद कुछ लोग प्रबन्ध काव्य कहने मे आपत्ति न करते। पर इसे मात्र यात्रा विवरण समझना लेखक के साथ न्याय नही होगा। यह तो आखें और कान खोलकर चलने वाले तुम्हारी ही तरह के छोटे दरवेश की एक छोटी-सी कहानी है।

पसन्द आए, तो भाग्य मेरा ! नही पसन्द आए तो राय देने वालो के लिए दरवेश की ही एक दुआ है "जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला।'

अन्त मे इतना और :

उजाले अपनी यादो के हमारे पास रहने दो।
न जाने किस गली मे जिन्दगी की शाम हो जाए॥

—क्षितीश

१५ अक्तूबर, १९७५
नई दिल्ली।

अनुक्रम

१

स्वप्न की तलाश में

आश्विन मास का मेरे जीवन में क्या महत्त्व है, मैं नही जानता। पर इसी मास मे मेरे साथ अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाए घटी है। आश्विन मेरा जन्म-मास है। शायद ज्योतिषी लोग कुछ रहस्य बताए।

अब से लगभग सात वर्ष पहले की बात है। यही आश्विन का महीना। अचानक एक रात मुझे स्वप्न आया।

पहले उस स्वप्न की बात ही आपको सुना दू

चटगाव से किसी अज्ञात व्यक्ति का पत्र मुझे प्राप्त होता है। उसमे लिखा है — "तुरन्त यहा चले आओ।"

मैं असमजस मे पड जाता हू। पत्र-लेखक कौन है, नही जानता। दिमाग पर काफी जोर डालता हू, पर किसी भी कोने मे कही कोई स्मृति की रेखा नही उभरती।

अजीब आदमी है। न जान, न पहचान। और लिखता है कि तुरन्त चले आओ। और फिर बुलाने का प्रयोजन? उसका कोई सकेत नही। फिर चटगाव क्या आसपास है?

उह! होगा कोई!

जैसे ससार मे मैं ही सबसे फालतू आदमी रह गया हू।

शायद किसीने जानबूझकर झासा देने का प्रयत्न किया है। या कोई शरारत है!

फिर अज्ञात व्यक्ति और अज्ञात स्थान!

नीतिकार कहते है—'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते', बिना प्रयोजन के तो कोई मूर्ख व्यक्ति भी किसी काम मे प्रवृत्त नही होता। मैं अपने-आपको मूर्ख कैसे मान लू।

मैं उस पत्र को मेज की दराज मे सरका देता हू और उसकी ओर से बिल्कुल लापरवाह बन जाता हू।

पर वह पत्र तो दराज मे पडा-पडा भी जैसे मुझे इशारे से बुला रहा है। उसे दराज से निकालता हू। फिर पढता हू।

पहले मन मे गुस्सा आया था। फिर उदासीनता का भाव जागा। तब दराज से निकालने के बाद मेज पर ही एक पुस्तक के नीचे दबाकर और उसे उलटकर रख देता हू—ताकि उसकी इबारत सामने न पडे।

पर मनुष्य का मन भी कैसा विचित्र है! कोई भी भाव स्थिर नही रहता। शायद यही मन की विशेषता है।

धीरे-धीरे गुस्से और उदासीनता का स्थान जिज्ञासा और उत्सुकता ले लेती है। आखिर उस व्यक्ति ने मुझे ही चिट्ठी क्यो लिखी? ससार मे और भी तो लाखो-करोडो व्यक्ति है।

फिर तुरन्त आने को लिखा है, तो जरूर कोई खास बात है।

प्रयोजन का उल्लेख न होने से यही कैसे मान लिया जाए कि यह बुलाहट सर्वथा निष्प्रयोजन है!

हो सकता है—खास मेरी ही आवश्यकता हो। मुझसे ही किसी बात का संबध हो। शायद मेरी ही भलाई का कोई प्रसग हो। शायद समृद्धि का कोई नया द्वार। शायद यश का कोई नया क्षत्र।

कानून कहता है कि जब तक किसीका अपराध सिद्ध न हो जाए, तब तक उसे अपराधी नही माना जा सकता। यही बात आध्यात्मिकता के साथ भी है— जब तक किसी व्यक्ति की बुराई सिद्ध न हो जाए तब तक उसे बुरा नही माना जा सकता। इतना ही नही, बुराई सिद्ध होने से पहले हरेक व्यक्ति को भला ही समझना चाहिए।

आस्तिक बुद्धि भी यही कहती है कि परमात्मा जो कुछ करता है वह सब व्यक्ति के भले के लिए ही करता है। यह अलग बात है कि व्यक्ति तत्काल उस घटना मे भलाई की खोज न कर सके। पर इससे परमात्मा के न्याय के प्रति मनुष्य शकालु क्यो बने!

जब मनुष्य मे अज्ञात सकट का सामना करने का मानसिक साहस न हो तब समझना चाहिए कि उसे बुढापे ने सचमुच घेर लिया है। बहुत अधिक

फूक-फूककर कदम रखना वार्धक्य-ग्रस्त मन की ही तो निशानी है।

फिर अज्ञात मे सदा एक दिव्य आकर्षण होता है। इस आकर्षण के प्रति दीवानगी ही चिरयौवन है। यह अज्ञात ही चिरकाल से मानव को हिमालय के सर्वोच्च शिखर के प्रति, समुद्रो की अगाध गहराइयो के प्रति, चन्द्रमा के धरातल के प्रति और प्रकृति के अन्तराल मे छिपे नाना रहस्यो की खोज के प्रति आकर्षित करता रहा है।

पता नही, अज्ञातनामा व्यक्ति के उस अप्रत्याशित और अनाहूत पत्र मे ऐसा क्या आकर्षण था कि अकस्मात् असमजस की स्थिति समाप्त हो जाती है और मैं सब कुछ ज्यो का त्यो छोड-छाडकर और घर-परिवार मे बिना किसीसे कुछ कहे-सुने स्टेशन की ओर चल देता हू।

स्टेशन पहुचकर टिकट वाली खिडकी के सामने लाइन मे खडे होने पर फिर असमजस। कहा का टिकट लू। चटगाव पहुचने का रास्ता कौन-सा है, यह भी नही जानता।

टिकट वाला बाबू पूछता है—कहा का टिकट दू ?

मैं बगलें झाकने लगता हू।

लाइन में मुझसे पीछे खडे व्यक्ति भी मेरी इस हरकत पर हैरान होते है।

—बोलते क्यो नही, कहा का टिकट लेना है ?

—अगर टिकट नही लेना है तो खिडकी छोडिये।

—साहब, जल्दी करिए, हम भी खडे हैं टिकट की प्रतीक्षा मे।

इस तरह लोगो के वाग्बाणो से मन आहत होता है। पर कहा का टिकट लू, यह समझ मे ही नही आता।

तभी एक अज्ञात ध्वनि मेरे कानो मे पडती है—

'हा, हा, कलकत्ते का ही टिकट लो।"

मैं अपने चारो ओर नजर दौडाता हू कि यह ध्वनि कहा से आई। पर मुझे कोई दिखाई नही देता।

और मैं सचमुच कलकत्ता का टिकट खरीद लेता हू।

इसके बाद मैं कैसे कलकत्ता पहुचा, वहा से फिर कैसे अगरतल्ला पहुचा, और अगरतल्ला से कैसे चटगाव पहुचा—इसकी कोई तफसील स्वप्न मे नही है।

हा, इतना अवश्य है कि जब मैं चटगाव पहुचता हू तो वही व्यक्ति मुझे प्रतीक्षा करता नजर आता है जिसने मुझे पत्र लिखा था।

मैं उसे नही पहचानता। पर मुझे देखते ही वह कहता है—"अच्छा, तुम आ गए?"

मैंने कहा—"हा, मैं आ तो गया। पर तुम कौन हो, और यहा मुझे क्यो बुलाया है, यह मैं कुछ नहा समझ सका।"

उसने छूटते ही कहा—" अरे, मुझे नही पहचानते? मैं वही तो हू तुम्हारा चिर-परिचित सु········ ····"और यह कहकर उसने वही नाम दुहरा दिया जो मुझे भेजे गए पत्र के अन्त मे लिखा था। उसने कहा—"मैं जानता था कि तुम अवश्य आओगे।"

मैं फिर असमजस मे।

मैं उसकी मुखाकृति की छवि को अपने मानस-पटल की प्रयोगशाला मे उतार कर उसका विश्लेषण करू— इससे पहले ही उसने कहा —"चलो मेरे साथ।"

मैं किसी जादू के जोर से बधा उसके पीछे-पीछे चल पडता हू।

धीरे-धीरे उसकी मुखच्छवि का पाजिटिव चित्र आखो से ओझल हो जाता है और नेगेटिव चित्र दिमाग मे उभरने लगता है।

मुझे लगता है कि इस पाजिटिव छवि को मैं भले ही न पहचानता हू, पर इसकी नेगेटिव छवि तो मेरी जानी-पहचानी है और हम दोनो कुछ काल से ही नही, बल्कि जन्म-जन्मान्तर से सुपरिचित हैं।

सामने सडक पर आगे-पीछे दो ट्रक खडे हैं। दोनो मे पटसन लदा है। पीछे वाले ट्रक पर दस-बारह आदमी सवार हैं। आगे वाले ट्रक पर हम दोनों उछलकर चढ जाते हैं।

हमारे चढ़ते ही ट्रक चल पडते हैं। आगे हमारे वाला ट्रक और पीछे दूसरा।

ट्रक चलते जाते हैं।

चलते जाते हैं।

चलते जाते हैं।

पता नहीं, किस अज्ञात स्थान की ओर हम चले जा रहे हैं।

मेरा ध्यान सडक के दानो ओर बसी वस्तियो पर जाता है। कच्चे पक्के मकानो की कतारें। कही चाय की दुकानें। कही छोटा मोटा बाजार। कही नग धडग खेलते बच्चे। कही-कही रग बिरगी लुगी पहने आदमियो के जमघट। चेहरे पर भोलापन, शरीर की रगत मे मिट्टी के रग की झलक, आखो मे चचलता और अक्सर स्थान-स्थान पर मछली की गन्ध। हा, औरतो का सर्वथा अभाव बिना ध्यान खीचे नही रहता।

सडक के दोनो ओर पानी का जमाव देखकर बाढ का सा दृश्य लगता है।

और ट्रक चलते जा रहे हैं।

सहसा एक स्थान पर हम दोनो ट्रक से उतर पडते हैं।

ठिगने कद का वह व्यक्ति फिर अगुआ बनता है।

अब पैदल चलने की बारी है।

दोनो ट्रक वही से वापस लौट जाते हैं। पिछले ट्रक मे वे १०-११ आदमी हमारे साथ किसलिए आए थे, यह स्पष्ट नही हो पाता।

सोचता हू शायद हमारे अगरक्षक बनकर आए थे और हमको अमुक स्थान पर पहुचाकर वापस चले गए।

पर हमे अगरक्षको की जरूरत क्यो होती ?

क्या किसी ऐसे सकट की आशका थी जिसके निवारण के लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक रही हो ?

कौन जाने !

बियाबान जगल के अज्ञात रास्तो से हम पैदल बढते जा रहे हैं। सु आगे आगे मैं पीछे पीछे।

जगल खत्म हुआ। एक बाग आ गया। हमारा पैदल चलना जारी रहा।

बाग मे ऊची-लम्बी घास। इतनी ऊची कि उसमे आदमी तो क्या, हाथी भी छिप जाए तो पता न लगे।

हम दोनो रेंगते हुए से उस घास मे से अपना रास्ता बनाते आगे बढते जा रहे हैं।

बाग खत्म, घास भी खत्म।

फिर चारों ओर पानी ही पानी।

हम दोनों उस पानी मे उतर पड़ते हैं। पहले घुटने जितना पानी। फिर धीरे-धीरे पानी की गहराई बढती जाती है — कमर तक, नाभि तक, फिर छाती तक।

उसके बाद लकड़ी की बाड़।

लकड़ी की बाड़ के बाद फिर पानी।

पर अब पानी घुटने जितना या छाती जितना नहीं, शुरू से ही इतना गहरा कि तैरने के बिना गति नहीं।

हम दोनों तैरने लगते हैं और आगे बढते जाते हैं।

तैरते जाते हैं और आगे बढते जाते हैं।

उस गहरे जल की खाई के बाद एक किलेनुमा चहारदीवारी आती है और उस चहारदीवारी के बीचोबीच एक मन्दिर अपना सिर ऊंचा किए खड़ा दिखाई देता है।

किसी तरह उस चहारदीवारी को लाघकर हम मन्दिर के आगन में पहुचते हैं। स्थान सर्वथा सुनसान है, न कोई आदमी, न आदमजात। मन्दिर के कपाट बन्द हैं। और मन्दिर के अन्दर प्रवेश का कोई मार्ग नहीं।

मन्दिर की छत के पास एक सीढी-सी है, पर उस सीढी तक पहुंचने का भी कोई रास्ता दिखाई नही देता।

उस सीढी के सामने एक गोल रोशनदान है।

क्या इस रोशनदान के रास्ते से मन्दिर के अन्दर प्रवेश नही किया जा सकता?

पर जब सीढी तक पहुचने का ही उपाय नही, तो रोशनदान तक पहुचने की बात सोचना भी बेकार है।

मैं किंकर्तव्यविमूढ।

किस भूलभुलैया मे फस गए?

तभी साथी सु··· को दाईं ओर की दीवार मे लगा एक हत्था दिखाई देता है।

वह हत्था पकडकर घुमाता है तो सशरीर सीढी पर।

आखो ही आखो मे, बिना कुछ बोले, वह मुझे अपने पीछे चले आने का इशारा करता है।

मैं भी दीवार मे लगा हत्था घुमाता हू, तो मैं भी सीढी पर।

फिर सु··· गोल रोशनदान के अन्दर अपना सिर घुसाता है तो आगे एक और रोशनदान नजर आता है। पर यह रोशनदान आयताकार है। इस नये रोशनदान मे पावो के बल जाना ही सभव था।

उस आयताकार रोशनदान के पास ही मन्दिर के घटे की जजीर लटक रही है।

सु···आयताकार रोशनदान में से होता हुआ बन्दर की तरह छलाग लगाकर घण्टे की जजीर पकड लेता है और उसके सहारे वह धीरे-धीरे मन्दिर के गर्भगृह मे उतर जाता है।

मैं आखो मे आश्चर्य लिए यह सब तमाशा-सा देखता रहता हू और फिर यही सब जिमनास्टिक मैं भी अपनाता हू।

मन्दिर में सिंहवाहिनी, महिषासुरमर्दिनी, दशभुजाधारिणी दुर्गा की भव्य प्रतिमा है। उसके आगे धूप-दीप जल रहा है और सारा मन्दिर एक अलौकिक सुगन्ध से गमक रहा है।

देवी की प्रतिमा के आगे एक जटाजूटधारी साधु सारे शरीर मे भस्मी रमाये ध्यानावस्थित बैठा है।

गर्भगृह के बीचो-बीच लटकती घण्टे की जजीर के सहारे जब हम दोनो बारी-बारी से धरा धाम पर अवतीर्ण होते हैं, तो साधु का ध्यान भग होता है।

आखें खोलकर साधु हमारी ओर देखता है।

हम उसकी ओर देखते है।

दोनो ओर आश्चर्य की मात्रा बराबर है।

कहा, कैसे, कौन---के प्रश्न दोनो ओर बराबर उमड रहे हैं।

तभी अचानक देवी की प्रतिमा के आगे धूप-दीप के साथ रखी दो छोटी-छोटी पेटियो की ओर मेरा ध्यान जाता है।

एक नया ही प्रश्न पुराने प्रश्नो के अम्बारो पर हावी हो जाता है।

"इस पेटी मे क्या है ?" मैं एक पेटी की ओर इशारा करते हुए पूछता हू।

साधु सहज भाव से पूछता है —"यह क्यो जानना चाहते हो ?"

अब सु· के बोलने की बारी है। सु···कहता हैं—"मैं इनको यही बताने के लिए यहा लाया हू।"

तब साधु ने बिना किसी भूमिका के कहा, "इस पेटी मे नापाम बम का इजेक्शन है।"

मैं साश्चर्य पूछता हू—" नापाम बम का इजेक्शन ?"

साधु दृढतापूर्वक कहता है —" हा।"

तब मैं दूसरी पेटी की ओर सकेत करते हुए पूछता हू — "और उस पेटी मे क्या है ?"

साधु उसी सहज भाव से कहता है—"इस पेटी मे अणुबम की रेडियो-धूलि के विकिरण से बचने का मसाला है।"

नापाम बम का इजेक्शन ?

अणुबम का एण्टीडोट ?

नापाम बम का इजेक्शन ?

अणुबम का एण्टीडोट ?

यही दो वाक्य दिमाग मे ऊपर-नीचे चक्कर लगाते रहते है। मेरी आखें फटी की फटी रह जाती है।

थोडी देर के लिए मैं जड बन जाता हू।

फिर मैं भी कभी साधु की ओर देखता हू, कभी देवी की प्रतिमा की ओर, कभी उन पेटियो की ओर, और कभी उस सर्वथा अपरिचित, किन्तु जन्म-जन्मान्तर से परिचित साथी सु··· की ओर।

प्रकृतिस्थ होने मे थोडी देर लगती है। फिर जैसे अपने दिमाग मे भरे शकाओ के फितूर को उगलकर बिना किसीको लक्ष्य किए, हवा मे प्रश्न उछालता हू —" यह देवी का मन्दिर है या कोई वैज्ञानिक प्रयोगशाला ?"

प्रश्न मे छिपे आरोप से भी साधु के मुख पर कोई उत्तेजना की लहर नहीं आती। वहा जैसे अखण्ड शान्ति का साम्राज्य विद्यमान है। निर्वात-निष्कम्प दीपशिखा-सी उसकी आखें। अतल समुद्र मे खडे अविचल प्रकाश-स्तम्भ-सा उसका मस्तक। टेलीविजन के एंटीना-सा उसका जटाजूट।

टेलीविजन के एंटीना मे हलका-सा कंपन आता है और साधु सान्द्र-गंभीर घोष के साथ आकाशवाणी-सी करते हुए कहता है—"पाकिस्तान को तोडने की हमारी योजना है।"

शायद आप कहेगे कि मैंने कोई मनगढन्त जासूसी कहानी आपको सुना दी है।

नही, यह जासूसी कहानी बिल्कुल नही है। यह है एक स्वप्न जो आश्विन मास की एक निभृत निशा मे मेरे मन के फलक पर अकस्मात् नाजिल हुआ था।

सवेरे जब सोकर उठा, तब इस स्वप्न की सारी बातें ज्यो की त्यो दिमाग मे साफ थी।

हो सकता है, आप इस स्वप्न की बात पर विश्वास न करें। मैं भी इस स्वप्न के फलितार्थ के बारे मे पहले विश्वास नही करता था।

बंगला देश के उदय के साथ पाकिस्तान का विघटन सत्य सिद्ध हो जाने पर किसीको भी इस स्वप्न मे चमत्कार जैसी कोई बात नही दिखेगी।

पर जिस समय मुझे यह स्वप्न आया था, तब तक राजनीतिक क्षेत्र मे तो क्या, औपन्यासिक स्तर पर भी कही पाकिस्तान के विघटन की कोई चर्चा नही थी।

कहा जाता है कि सबसे पहले ढाका विश्वविद्यालय में समाजविज्ञान विभाग की अध्यक्षा कुमारी रौनक जहा ने सन् १९७० के प्रारम्भ में इस बात की घोषणा की थी कि अब पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान के साथ किसी भी हालत मे नही रह सकता। जिस पुस्तक में उसने यह बात लिखी थी, उस पुस्तक का नाम था 'पाकिस्तान ए फेल्योर इन नेशनल इंटिग्रेशन' और वह सन् १९७२ मे केलिफोर्निया (अमेरिका) से प्रकाशित हुई थी।

पर मुझे यह स्वप्न उससे भी दो वर्ष पहले आया था।

हो सकता है, सन्त-महात्माओ को स्वप्न मे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओ की पूर्व-सूचना मिल जाती हो। पर मैं तो सन्त-महात्माओ की चरणरज होने के योग्य भी नहीं। फिर भी मुझे कई बार स्वप्नों मे महत्त्वपूर्ण घटनाओ के संकेत मिले हैं।

सवेरे मैंने अपनी पत्नी को जब यह स्वप्न सुनाया तो उसने हूँसे

कहा—'तुम तो सदा इसी तरह की बेसिरपैर की बातें सोचते रहते हो, इसलिए तुम्हे स्वप्न भी बेसिरपैर के ही आते हैं।"

सभी भलेमानस मेरे उस स्वप्न को बेसिरपैर का ही बताएंगे।

पर मुझे चैन नही पड रहा था। मुझे लग रहा था कि यह कोरा स्वप्न नही है, बल्कि भावी घटनाओ का सूचक है।

तब मैंने अपनी डायरी मे यह स्वप्न अंकित कर लिया।

यह डायरी आज भी मेरे पास मौजूद है। डायरी मे स्वप्न को अकित करने की तारीख पडी है— १५ अक्तूबर, १९६८।

१५ अक्तूबर, १९६८ के बाद से ही मन मे यह धुन थी कि बगला देश मे जाकर उस स्थान की तलाश करू जिस स्थान का स्वप्न मे निर्देश था। वह स्थान अवश्य चटगाव के आस-पास ही होना चाहिए। क्योकि स्वप्न के उस अपरिचित सुपरिचित सु ने मुझे चटगाव ही बुलाया था।

पर यह स्थान चटगाव के पास ही हो, यह एकदम जरूरी भी नही है। बगला देश मे किसी भी स्थान पर हो सकता है। अग्रेजी मे कहावत है, 'नो सिमिली स्टैण्ड्स ऑन फोर लैंग्स'—वैसे ही स्वप्न की भी सारी बातें अक्षरश सत्य हो, यह समझना स्वप्न विज्ञान के प्रति अन्याय होगा। फिर भी उस स्थान से मिलता - जुलता कोई स्थान बगला देश मे अवश्य होना चाहिए — यह विश्वास मन मे बैठा हुआ था।

जैसे सन्तान के बडा होने मे समय लगता है, वैसे ही सकल्प - शिशु के वयस्क होने मे भी टाइम लगता है। सालो साल कोई सकल्प मन के किसी कोने मे दुबका पडा रहता है, पर वह परवान तभी चढता है, जब उसका उचित समय आता है।

वह उचित समय कब आता है, यह कदाचित् अपने हाथ की बात नही है। पाकिस्तान के टूटने की ही बात ले लीजिए, स्वप्न मे सकेत मिला सन् १९६८ मे, पर उसके चरितार्थ होने का अवसर आया उसके तीन साल बाद, सन् १९७१ मे।

आप कल्पना कर सकते हैं कि सन् १९७१ के मुक्तिवाहिनी के सघर्ष के दिनो मे और भारत के सैन्य अभियान के दिनो मे मेरे मन मे कितनी तला-

मली मची होगी अपने स्वप्न के घटनास्थान को देखने की। पर वह अवसर तब नहीं आया।

अवसर आया सन् १९७४ मे, पूरे सात साल बाद।

दिसम्बर के महीने मे अचानक कलकत्ता जाने का सुयोग बना तो मुझे लगा कि बगला देश मे अपने स्वप्न की तलाश करने का समय अब आ गया।

मेरी बगला देश की यात्रा उसी स्वप्न की तलाश है।

२

कलकत्ता से ढाका

दिसम्बर का अन्तिम सप्ताह रौनक का समय होता है—खासकर बडे शहरो मे। एक तो बडे दिनो की छुट्टिया, फिर राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक और साहित्यिक सस्थाओ के वार्षिक सम्मेलन भी उन्ही दिनो मे होते है। फिर इस बार टेस्ट मैच का अतिरिक्त आकर्षण भी साथ मे जुड गया।

इस प्रकार नई-नवेली दुलहिन की-सी साज-सज्जा से अलकृत कलकत्ता महानगरी भीड के लिए अपनी सामान्य ख्याति को और असामान्य बनाकर सन् ७५ के नव वर्ष के आगमन की आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी, कि अकस्मात् २६ दिसम्बर के समाचारपत्रो मे खबर छपी कि बगला देश मे आपात स्थिति घोषित हो गई है, सविधान मे प्रदत्त जनता के मूलभूत अधिकार स्थगित कर दिए गए है और सब मुख्य स्थानो को सेना ने अपने नियन्त्रण मे ले लिया है।

बगला देश मे पत्ता भी हिले तो उसकी प्रतिक्रिया कलकत्ता मे हुए बिना नही रहती। ढाका से जो पत्रकार बडे दिनो की छुट्टियो की मौज मे क्रिकेट का टेस्ट मैच देखने कलकत्ता आए हुए थे, वे सब मैच बीच मे छोडकर ३० दिसम्बर को ही कलकत्ता से वापस ढाका उड गए। पता नही आगे क्या होने वाला है, ऐसे समय हमे बगला देश की राजधानी मे ही रहना चाहिए —कर्तव्य की यही पुकार उनके मन मे थी।

तभी मैने भी बगला देश जाने का इरादा पक्का कर लिया।

पासपोर्ट और वीसा की व्यवस्था दिल्ली से ही करके चला था।

कलकत्ता से स्थल मार्ग द्वारा ही बगला देश जाना चाहता था। किसी देश को पूरी तरह देखना समझना हो तो उसमे विमान यात्रा सहायक नहीं होती। जो लोग कबड्डी म पाला छूने की-सी हरकत को ही यात्रा समझते

हैं, विमान-सेवा उन्हींके लिए है।

पर साथी पत्रकारो ने कहा कि किसी गैर बगलाभाषी के लिए इस समय स्थल मार्ग से बगला देश जाना अपने लिए खतरा मोल लेना है—इतनी अराजकता है, तभी तो आपातकालीन स्थिति घोषित की गई है।

मैं अपने इरादे से डिगने को तैयार नही हुआ। तब साथियो ने मित्रता-पूर्ण सलाह दी कि यदि जाना ही है तो वायुमार्ग से जाओ, कम से कम ढाका तो सुरक्षित पहुच सकोगे।

पता लगा कि कलकत्ता से ढाका के लिए दिन-भर मे केवल एक ही उडान है—प्रात साढे आठ बजे। आपातस्थिति के कारण कलकत्ता से ढाका लौटने वाले यात्रियो की सख्या भी बढ गई थी इसलिए टिकट मिलना आसान नही था।

३० दिसम्बर को दौड-धूप करके विमान का टिकट लिया और ३१ ता० को सवेरे साढे सात बजे मैं दमदम हवाई अड्डे पर पहुच गया।

बगला विमान सेवा का अड्डा थोडा हटकर है जहा जाने के लिए वाहन या सामान के लिए कुली भी सहज सुलभ नही होता।

ठीक ९ बजे कैरेवल विमान उडा और ५० मिनट मे लगभग २०० मील का सफर तय करके दस बजते न बजते उसने ढाका के हवाई अड्डे पर पहुचा दिया।

सवेरे दमदम पहुचते समय ठडी हवा का सामना करना पडा था, ढाका के हवाई अड्डे पर उतरते ही खुले आकाश और सुनहरी धूप ने उसकी भरपाई कर दी।

मार्ग मे विमान मे ही एक सहयात्री से पता लगा कि बगला देश मे भारतीय मुद्रा के २० रुपये से अधिक लेकर नही जा सकते। इससे चिन्ता पैदा हुई।

परन्तु हवाई अड्डे पर तलाशी नही हुई। इतना जरूर पूछा गया कि ढाका मे कहा ठहरेंगे और खर्च का क्या इन्तजाम होगा। ढाका मे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का उपकार्यालय होने से इसका उत्तर देने मे कोई कठिनाई नही थी।

ढाका के हवाई अड्डे से बाहर निकलते ही भिखारियो ने घेर लि

मुझे ही नही, सभी यात्रियो को। छोटे-छोटे बच्चे, सर्दी के मौसम मे भी वस्त्रहीन। पेट पीठ से लगे हुए। दयनीय सूरतें।

अहा! नवागन्तुक का यह कैसा स्वागत है!

और मुझे याद आता है हवाई जहाज मे यात्रियो को दिया गया नाश्ता—सुन्दर, स्वादिष्ट और पर्याप्त। साथ में चाय या काफी—जो आपको पसद हो।

इन भिखारियो को देखकर मन ही मन मुझे लज्जा आ रही है—क्या किसी तरह यह नही हो सकता था कि अपने पेट मे अनावश्यक रूप से ठूसने के बजाय मैं वही नाश्ता इन भिखारियो में से किसी एक को दे देता।

हवाई अड्डे से शहर तक की सडक अच्छी लगी। साफ-सुथरी और चौडी। ढाका की प्राय सभी मुख्य सडकें इसी कोटि में आती हैं। सडको के बीच की हरी पट्टी भी सुन्दर है।

शहर में घुसते ही जिस बात ने मुझे प्रथम दृष्टि में ही आकर्षित किया, वह थी—अधिकाश दुकानो, बैंको, और होटलो के नामपट्ट बगला भाषा में। अग्रेजी कही-कही केवल अपवादस्वरूप।

दोपहर को भारतीय दूतावास गया। पत्रकार के नाते वहा मुझे प्रथम परामर्श यह मिला (१) अकेले कही मत जाओ, बगलाभाषी न होने के कारण अकेले जाने पर परेशानी हो सकती है। खासकर रात में कही अकेले मत निकलो। (२) आन्तरिक अचलो मे मत जाओ। (३) अपने भारतीय होने की बात को अनावश्यक रूप से मत उछालत फिरो। (४) अपनी आख और कान खुले रखो पर मुह नही। (५) यदि कही कोई अवांछनीय घटना घटित हो तो हमें तुरन्त सूचित करो।

पूर्ण सदाशयता से दिए गए इन सुझावो के भाष्य की आवश्यकता नही। मैं चौंका भी। पर इससे स्थिति की विषमता का अन्दाज लग गया। ये सुझाव सचमुच ही बहुत काम आए।

कलकत्ता की भीड देखकर गया था—जहा 'ट्रैफिक जाम' हर रोज की बात है। पर सर्दियो की दोपहर मे भी ढाका के मुख्य बाजारो मे, जहा बडे-बडे स्टोरो का प्राय अभाव है और दैनिक आवश्यकता की छोटी छोटी दुकानो का बाहुल्य है, मुझे भीड का अभाव अखरा। 'ट्रैफिक जाम' की तो

बात ही नही।

अलबत्ता 'गुलिस्तान' के मुख्य बाजार मे शाम को चौराहे पर दफ्तरो और दुकानो से छुट्टी करके चारो ओर से आने वाले लोगो की भीड कुछ अच्छी लगी। यो 'इण्टरकान्टिनेंटल' और 'पूरवाणी' जैसे होटलो की तथा 'सोनाली' और 'नेशनल बैंक आफ बगला देश' जैसे बैंको की इमारतें भव्य लगी। पर शहर का व्यक्तित्व तो इमारतो से नही, आदमियो की भीड से ही बनता है।

और हा, सोनाली बैंक की भव्य और आधुनिक इमारत के द्वार के नजदीक ही सडक पर चटाई ओडे, दो मुट्ठी चावल के लिए तरसते, अस्थि-कंकाल, भिखारियो ने भी आखो के सामने अमीरी और गरीबी का 'कण्ट्रास्ट' उपस्थित करके चित्र को एकरस होने से बचा लिया।

बगला देश मे घडी आधा घटा आगे रहती है। फिर भी सूर्यास्त साय ५ बजे ही हो गया और साढे पाच बजे तक तो अच्छी तरह रात का आलम छा गया।

अगले दिन एक जनवरी थी—नववर्ष का पहला दिन। मुझे बगला देश की राजधानी मे कोई विशेष चहल-पहल नजर नही आई। और पूर्व-सध्या को दिल्ली जैसा हो हुल्लड तो बिल्कुल नही। क्या वह सब पेट-भरो के चोचले हैं। या 'इमर्जेन्सी' ने ढीला कर दिया है। अलबत्ता कलकत्ता टेस्ट मे भारत विजय के समाचार से कुछ वर्गों के चेहरे पर चमक जरूर नजर आई। ढाका मे मैंने वह रमण रेस कोर्स मैदान देखा जहा पाकिस्तान के बहत्तर हजार सैनिको ने जनरल नियाजी के नेतृत्व मे जनरल अरोडा के समक्ष आत्मसमर्पण किया था।

दिल्ली के रामलीला मैदान से कही बडा है यह मैदान। १० जनवरी, १९७२ को बगबन्धु शेख मुजीब का स्वागत इसी मैदान मे हुआ था, जब वे पाकिस्तान के मृत्यु कारागार से छूटकर आए थे। बगबन्धु ने अपने राज-नीति गुरु श्री हसन शहीद सुहरावर्दी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए अब इस मैदान का नाम 'सुहरावर्दी उद्यान' रख दिया है।

इसी मैदान की बगल मे एक गुरुद्वारा था, जिसे पाकिस्तानी सेना ने तहस-नहस कर दिया था। भारत के विजयी सेनापति जनरल

पहल से अब उसका जीर्णोद्धार हो चुका है और वहा एक ग्रन्थी भी रहता है।

परन्तु रेसकोर्स मैदान के अन्दर ही कई सौ साल पुराना काली का एक बडा मन्दिर था जिसे पाकिस्तानी सेना ने नेस्तनाबूद करके और वहा ट्रैक्टर चलाकर बिलकुल समतल कर दिया था। उसके जीर्णोद्धार की चर्चा भी कही सुनाई नही दी। काली का यह मन्दिर कभी क्रान्तिकारियो का विशिष्ट पूजा-स्थान था और वे इसी मन्दिर मे क्रान्ति की दीक्षा लिया करते थे।

ढाकेश्वरी का मन्दिर देखा जिसके नाम से 'ढाका' नाम पडा। इस मन्दिर को एक हजार साल पुराना बताया जाता है। यहा शिवरात्रि के दिन मेला लगता है। जनता के मन-मन्दिर मे बसी इस मन्दिर की प्रतिष्ठा को ध्यान मे रखकर ही पाकिस्तानी सेना ने इसे नही छुआ और यह उन प्रलयकारी दिनो मे भी सुरक्षित रहा। नेपाल-नरेश ने परिवार सहित इस मन्दिर के दर्शन की अपनी इच्छा से याहिया खा को अवगत कर दिया था। इस कारण भी पाक सैनिक इस मन्दिर से दूर रहे।

म्यूजियम देखा। बगला देश वाले म्यूजियम को 'जादूघर' लिखते-बोलते हैं। पहले 'जादूघर' शब्द से चौंका। जब पता चला कि यह म्यूजियम है, तब उसको देखना आवश्यक हो गया।

बगला देश के विभिन्न स्थानो पर खुदाई मे प्राप्त सरस्वती, सूर्य, लक्ष्मी, विष्णु और बुद्ध की कलापूर्ण मूर्तिया वहा प्रचुर सख्या मे विद्यमान हैं। सस्कृत, अरबी, फारसी के शिलालेख भी अच्छी सख्या मे हैं। सस्कृत का एक शिलालेख बादशाह सिराजुद्दीन द्वारा तैयार कराया गया है, जो इस बात की निशानी है कि मुसलमान बादशाह भी सस्कृत को प्रश्रय देने मे पीछे नही थे। सुलतान जलालुद्दीन सस्कृत का प्रशसक था और उसने अपने दरबार मे बृहस्पति नाम के एक पण्डित को रखा था और उसे 'रायमुकुट' का खिताब दिया था। दीनाजपुर मे प्राप्त सुल्तान महमूदशाह का एक सस्कृत शिलालेख भी म्यूजियम मे मौजूद है जिसमे उसके द्वारा पुल बनाए जाने का उल्लेख है।

जब सस्कृत की बात आ ही गई, तो यहा यह कह देना भी अप्रासगिक

नही होगा कि औरगजेब से पहले जितने मुसलमान बादशाह हुए, उन्होने प्राय सस्कृत भाषा को और सस्कृत के पण्डितो को प्रश्रय दिया है। बगभूमि मे ही नही, वहा से बहुत दूर कश्मीर मे भी, यही प्रवृत्ति रही है। कश्मीर के शासक जैनुलआबदीन ने सस्कृत के अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थो का फारसी अनुवाद कराया था और उससे पूर्ववर्ती शासक के समय जो पण्डित कश्मीर छोडकर भाग गए थे, उन सबको उसने वापस बुलाया था। उसने 'राजतरगिणी' के लेखक प्रसिद्ध कवि कल्हण से स्वय 'योगवासिष्ठ' सुना था। कश्मीर के कुछ मुस्लिम शासको ने अपने शासनकाल मे सस्कृत को राजभाषा भी बनाया था। कश्मीर के अनेक मकबरो पर आज भी सस्कृत के शिलालेख लगे हैं।

औरगजेब के पिता शाहजहा का और सगे भाई दाराशिकोह का सस्कृत-प्रेम तो प्रसिद्ध ही है। शाहजहा ने अपने दरबार मे कवीन्द्राचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ, नित्यानन्द, वेदाग राय, और परशुराम मिश्र जैसे विद्वानो को सादर प्रश्रय दिया था। शाहजहा ने वाराणसी तथा प्रयागराज जैसे धार्मिक तीर्थों मे यात्री-कर भी समाप्त कर दिया था। दाराशिकोह ने उपनिषदो और वेदान्त दर्शन का फारसी मे अनुवाद किया था।

गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन और हिन्दी साहित्य मे रहीम के नाम से प्रसिद्ध अब्दुर्रहीम खानखाना ने 'खेट कौतुकम्' नामक एक ज्योतिप-सम्बन्धी ग्रन्थ और 'मदनाष्टकम्' नामक काव्यग्रन्थ सस्कृत मे ही लिखे थे।

बगाल के सप्तग्राम विजेता दरामखा ने सस्कृत मे 'गगा-स्तुति' लिखी थी। बगाल के नवाब शाइस्ताखा के भी सस्कृत मे रचित कुछ पद 'रासकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ मे उपलब्ध हैं।

इसी शाइस्ताखा का एक वशज आज भी ढाका मे विद्यमान है और बगला देश की सरकार के किसी विभाग मे चपरासी का काम करता है। ढाका के मुगलकालीन किले को वह अपनी पुश्तैनी जायदाद मे शामिल करता है और उसे हस्तगत करने के लिए उसने अदालत म दावा भी कर रखा है। कभी उसीके पूर्वजो ने ईस्ट इडिया कम्पनी को यह किला १५ रु० मासिक के हिसाब से किराये पर दिया था। इस सम्बन्ध के कागजात उसके पास अभी तक मौजूद हैं। पर जमाना इतना बदल गया है कि उसकी कही

सुनवाई की सम्भावना नही है।

बात तो म्यूजियम की चल रही थी।

इसी म्यूजियम के हथियारो वाले कक्ष मे राणा कुम्भा और टीपू सुल्तान की तलवारें हैं। नादिरशाह के जमाने की पिस्तौलें है जो आकार-प्रकार मे आधुनिक ऑटोमैटिक गन से मिलती-जुलती है।

एक कक्ष मे बगला देश के मुक्ति-सग्राम का परिचयात्मक सचित्र इतिहास है—जो २५ मार्च, १९७० से शुरू होता है, जिस दिन बगबन्धु शेख मुजीबुर्रहमान ने रमण रेसकोस मैदान मे पहली बार बगला देश की स्वतत्रता के लिए और पाकिस्तान के पजे से मुक्ति के लिए जनता का आह्वान किया था, और उस दिन समाप्त होता है जिस दिन जनरल नियाजी के नेतृत्व मे पाकिस्तानी सेना ने भारतीय सेना के समक्ष आत्मसमर्पण किया था।

यही बगला भाषा मे लिखी कुरान और अरबी लिपि मे लिखे गए बगला भाषा के कई ग्रन्थ देखने को मिले। यही देखने को मिले रवि बाबू, शरत-चन्द्र चट्टोपाध्याय और जगदीशचन्द्र बसु जैसे बगभूमि के सपूतो के उन्ही की हस्तलिपि मे लिखे वे अमूल्य मूलपत्र जिनका मूल्य रुपये-पैसो मे नहीं आका जा सकता।

इसके बाद देखा बारदा हाउस नामक एक अनुपम बाग जिसे नरेन्द्रनाथ राय नामक एक ज़मीदार ने केवल व्यक्तिगत शौक के आधार पर बनाया था। जिस तरह हैदराबाद का सालारजग म्यूजियम एक व्यक्ति के ही शौक, श्रम और धन का परिणाम है, उसी तरह तीन एकड मे फैला यह बालदा हाउस उद्यान भी। उस व्यक्ति ने देश विदेश से किस प्रकार के पेड-पौधे और फूल इकट्ठे करके यह नायाब वाटिका तैयार की होगी, यह बिना अपनी आखो से देखे कल्पना नही हो सकती।

श्री राय को न केवल वनस्पति विज्ञान का शौक था, दर्शन, कला, साहित्य और अध्यात्म मे भी उनकी अगाध रुचि थी। वे अनेक भाषाओ के पण्डित थे।

इस बाग के दो खण्ड है। दोनो के अलग अलग द्वार हैं जिनके नाम यूनानी भाषा मे हैं। एक द्वार का नाम है 'सिबिलि' (यूनानी मातृदेवता) और दूसरे द्वार का नाम है 'साइकि' (जिसका ग्रीक भाषा म अर्थ है—

गायब हो गए हैं। वे सम्बद्ध अफ़सरो की गृह-वाटिकाओ की शोभा बढा रहे हैं। जिस बाग मे दर्शनार्थियो की पहले भीड लगी रहती थी, अब उसका दर्शनार्थी मुझे अपने सिवाय और कोई दिखाई नही दिया।

ढाका विश्वविद्यालय देखा— जिसकी न केवल शिक्षा के क्षेत्र मे, बल्कि मुक्ति-सग्राम मे भी, महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

ढाका का हाईकोर्ट देखा जिसकी शानदार इमारत पूर्वी पाकिस्तान के गवर्नर आजमखा की बेहतरीन यादगार है।

सचिवालय देखा—जिसकी इमारत भव्य है, पर काम-काज की चहल-पहल कही नही दीखी।

बैतुल मुकर्रम मस्जिद देखी जो दिल्ली की जामा मस्जिद से कही बडी है और जिसका एशिया-भर मे विशिष्ट स्थान है। इसी मस्जिद की छत की मीनार पर एक हवाई जहाज बना हुआ है जिसके काकपिट मे बैठकर मौलवी सवेरे-सवेरे अजान लगाता है और ध्वनि-विस्तारक यन्त्रो की कृपा से उसकी बाग दूर-दूर तक सुनाई देती है।

ढाका की बगल मे ही बहती है गगा, जो वहा पद्मा या बूढी गगा कहलाती है। उसके तट पर बना है ढाका के नवाब का महल जिसके द्वार और खिडकिया गगा की ओर खुलते हैं। इस मनोरम तट पर ठाकुरबाडी जैसी आलीशान इमारतो की उपस्थिति इस बात की सूचक है कि पहले कभी ढाका के रईस इधर ही रहा करते होगे। यह तटीय भूभाग पहले कभी प्रात कालीन भ्रमणार्थियो की अच्छी सैरगाह थी, पर अब नया बाजार और लाचघाट के भीड-भडक्के तथा गदगी की भरमार की वजह से उधर कोई घूमने नही जाता।

सखारी पट्टी नामक हिन्दुग्रो का घना आबाद मुहल्ला देखा जो पुरानी दिल्ली के गली-कूचो जैसा है और जिसके बहुत-से जले अधजले मकान अब भी पाकिस्तानी सेना की नृशसता की कथा कहते हैं।

ढाका का वह प्रसिद्ध जौहरी बाजार देखा जो अपनी शान-शौकत और साज-सज्जा मे दिल्ली के दरीबे के जौहरियो के कान काटता है और जिसे लूट-मार की अभ्यस्त पाक सेना का सबसे अधिक कोप-भाजन बनना पडा था। अब स्वतत्र बगला देश के उदय के पश्चात् इस बाजार की रौनक कुछ-कुछ लौट आई

है, पर अपनी समृद्धि के लिए विख्यात यह बाज़ार कभी अपने पूर्व वैभव को प्राप्त कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

और बहुत कुछ देखा।

इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यवस्थाओं, पेशों और विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलना-जुलना तथा भेंट-मुलाकात भी चलती रही।

और जब ढाका से मन भर गया तो मैं चटगाव के लिए चल दिया।

३

चटगांव :
जो कभी क्रान्तिकारियों का केन्द्र था

चटगाव जाने के लिए भी नेक सलाह यही थी कि हवाई जहाज से जाना अधिक सुविधाजनक और सुरक्षित है।

यह बगला देश की उपलब्धि ही कही जाएगी कि वहा के अधिकाश बड़े नगर विमान-सेवा से जुड़े हैं। पिछले तीन सालो मे लखपतियो का जो नया वर्ग वहा पैदा हो गया है उसे विमान-सेवा ही अधिक रास आती है। पर धरती के बेटो से मिलना हो तो हवा मे उड़ने से क्या काम।

मैंने चटगाव जाने के लिए सवेरे ६ बजे की पहली बस पकडी।

यो सारा बगला देश नदियो की क्रीडास्थली है, पर ढाका तो अक्षरश. चारो दिशाओ से नदियो से घिरा है। ढाका से निकलकर कही भी बाहर जाना हो तो फेरी की शरण अनिवार्य है।

आए दिन फेरी उलटने की घटनाए वहा के जन-जीवन मे सनसनी पैदा नही करती, जैसे बरसात के दिनो मे बाढ की विभीषिका से वहा किसीको आश्चर्य नही होता। और फेरियो के इस चक्कर मे समय की पाबन्दी की किसीको शिकायत नही करनी चाहिए। एक फेरी निकल जाए तो अगली फेरी की प्रतीक्षा मे घटे-भर से लेकर दो घण्टे तक का समय निकल जाना सामान्य बात है।

मुश्किल से बस १०-१५ मील चली होगी कि सूर्योदय होते न होते मेघना नदी के तट पर पहुच गए। बसो की लाइन लग गई। जब नम्बर आया तो हमारी बस भी सशरीर फेरी पर लद गई। नदी के विस्तृत पाट तक फैली निश्शब्द जलराशि पर सूर्योदय के दृश्य को देखते हुए मैं कविता के मूड में था कि साथ की सीट पर बैठे सहयात्री ने पूछा—"तैरना आता है ?"

मैं चौंका 'हां, आता तो है, पर तुम यह क्यो पूछ रहे हो ?"

उसने कहा—"कोई खास बात नही, पर फेरी से नदी पार करते हुए कभी उसकी जरूरत पड सकती है। वैसे कोई खतरे की बात नही, पर अचानक "

मैं उसके मुह की ओर देखने लगा।

सकुशल नदी पार करने पर जैसे राहत मिली।

मगर बस के आगे बढने से पहले कन्धे पर आटोमैटिक गन लटकाए दो सैनिको ने बस के अन्दर घुसकर सब यात्रियो के सामान का बारीकी से निरीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया।

मैंने सहयात्री से पूछा—' ये किस चीज की तलाश मे हैं ?"

उसने धीरे से कहा—'यह इमर्जेन्सी है। अब कोई व्यक्ति एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे चावल लेकर नही जा सकता। तुम्हे मालूम नही, आजकल खुले बाजार मे चावल का क्या भाव है ?"

फिर स्वय ही मेरे कान के पास मुह लगाकर फुसफुसाया—"तीन सौ रुपये मन।"

"तीन सौ रुपये मन या तीन सौ रुपये क्विंटल ?" मैंने पूछा।

उसने मुह पर हाथ रखकर इशारा किया कि मुझे सैनिको की उपस्थिति मे चुप रहना चाहिए।

मैं देख रहा था कि मेरे इस सवाल-जवाब से अन्य यात्रियो का भी ध्यान मेरी ओर चला गया था और वे मुझे 'विजातीय द्रव्य' समझ रहे थे। इसलिए मैंने भी चुप रहना ही श्रेयस्कर समझा।

इस प्रकार तीन बार फेरी से नदी पार करनी पडी और बार-बार सैनिको द्वारा निगरानी का सामना करना पडा।

फिर बस सरपट भाग चली। पर उसमे भी गति का आनन्द नही, क्यो कि सडक की हालत ऐसी थी कि अन्दर बैठे यात्री को झटके पर झटके चैन से नही बैठने देते थे।

ज्यो-ज्यो बस्तिया गुजरती गईं, बस के अन्दर भीड बढती गई। जितने यात्री सीटो पर बैठे, उससे अधिक बिना सीटो के खडे।

रास्ते में एक स्थान पर बस से नीचे उतरा तो देखा कि बस की छत पर भी लोग असामान्य रूप से लदे हुए हैं। कुछ व्यक्ति अपने सिर पर अपना

सामान लादे हुए पीछे भी लटके हुए है। उनके भुजबल के प्रति अनायास मन मे प्रशसा का भाव उदय हुए विना नही रहा। एक हाथ से सिर पर लदे बोझ को सभाले और दूसरे हाथ से बस के पीछे लटके-लटके सारे शरीर को सतुलित रखते हुए मीलो का सफर क्या साला जी का घर है !

रास्ते मे कोमिल्ला आया। जिले का मुख्यालय होने के कारण बाजार बडा है, रौनक वाला भी। यहा से ५ मील दूर मैंनामाटी है जहा की खुदाई मे मिली मूर्तिया और सोने-चादी के सिक्को ने उस प्रदेश मे सातवी-आठवी शती के समृद्ध बौद्ध शासन की स्थिति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। इसी मार्ग पर फेनी आया जहा से नोआखाली और त्रिपुरा की सीमा बहुत नज़दीक है। सीताकुण्ड आया जो अपने मन्दिरो के कारण धार्मिक जनो का तीर्थ है।

कभी यह सीताकुण्ड का तीर्थ भी क्रान्तिकारियो का ऐसा अड्डा रहा है जिसका सम्बन्ध समस्त भारत के क्रान्तिकारियो से गुप्त रूप से जुडा हुआ था। वाराणसी के कुछ साधु वहा रहा करते थे। पर बगला देश की वर्तमान अवस्था ने उनको सीताकुड छोडने पर विवश कर दिया।

सडक के सीमावर्ती गावो के खेतो मे पुश्तैनी ढग से शारीरिक श्रम मे जुटे कृषक परिवारो को देखकर यह जाचने मे देर नही लगी कि वैज्ञानिक ढग से खेती का सपना अभी बगला देश से बहुत दूर है। यो भी खेत बहुत छोटे-छोटे है, इसलिए उनमे नये वैज्ञानिक उपकरणो की उतनी गुजाइश भी नही।

गावो मे घरो के साथ पोखरो (पुष्करिणी) की अनिवार्यता बगला देश की अपनी विशेषता है। वन्य हरीतिमा भी अनेक स्थानो पर दर्शनीय है।

चटगाव मे ही जन्मे, बग-साहित्य मे नवयुग के पुरोधा, साहित्य के राजर्षि, बकिमचन्द्र ने 'वन्देमातरम्' के राष्ट्रगान मे भारतभूमि को जो 'सुजला सुफला शस्यश्यामलाम्' के विशेषण दिए है, उनकी सार्थकता स्थान-स्थान पर प्रकट होती थी।

लगभग ढाई बजे चटगाव पहुचे। तब पता लगा कि कई दिनो के बाद उसी दिन बस ठीक समय पर पहुची थी। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझा।

चटगाव बगला देश का सबसे बडा बन्दरगाह और ढाका के बाद शायद

दूसरे नम्बर का शहर है। प्राकृतिक शोभा प्रलोभनीय है। तीन ओर हरी-भरी पहाडिया और एक ओर समुद्र। इब्नबतूता ने कभी चटगाव को 'मदीनातुल-अखजार' (हरा-भरा शहर) कहा था। वह अयथार्थ नही था। चटगाव व्यापार वाणिज्य का ही नहीं, उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो का भी केन्द्र बनता जा रहा है। यहीं से पार्वत्य-पथ (हिल ट्रैक्ट्स) का प्रदेश शुरू होता है जो बर्मा तक चला गया है।

त्रिपुरा, मिजोरम, बगला देश तथा अराकान की पहाडियो को अपने वन-पथो से मिलाने वाला यह प्रदेश चिरकाल से क्रान्तिकारियो और विद्रोहियो के लिए शरणस्थल रहा है। अपनी मुक्ति के कुछ काल मे पश्चात् बगला देश की सरकार को कबायलियो के एक सगठित विद्रोह का यहा सामना करना पडा था और उसके दमन के लिए उसे भारतीय सेना की याचना करनी पडी थी।

सर्वहारा पार्टी के 'नक्सलपथियो' की लीलास्थली भी यही प्रदेश है।

चटगाव मे रहते हुए ही समाचार मिला कि इस पार्टी का युवक नेता सिराज सिकदर पकडा गया और पुलिस के पजे से बचकर भागने का प्रयत्न करते हुए गोली से मारा गया। 'इमर्जेन्सी' के बाद जो सतर्कता बरती गई और पकड धकड शुरू हुई, उसीका यह नतीजा था। पर सिराज के अन्ध-भक्त ऐसे युवक भी मुझे मिले, जो कहते थे कि असली सिराज अभी जिन्दा है।

चटगाव को इसी भौगोलिक परिस्थिति ने ब्रिटिश [illegible] भी भारत का ही हिस्सा था, इस प्रदेश मे क्रान्तिकारियो का [illegible] (अब 'उपमहाद्वीप' कहिए, पर बगला देश के लोग 'उपमहाद्वीप' शब्द का प्रयोग नही करते, वे 'महादेश' कहते हैं। 'उपमहाद्वीप' का यह अंग्रेजी की नकल पर कहने लगे।) का सिरमौर बना [illegible] 'अनुशीलन समिति' का गढ था चटगाव। [illegible] 'षड्यन्त्र काण्ड' से कम महत्वपूर्ण नहीं है [illegible]

इस काण्ड मे 'मास्टर दा' के [illegible] कारियो के एक दल ने सरकारी [illegible]

१

मे अपना सत्ता स्थापित कर ली थी। बाद में अंग्रेजो ने सबल सैन्य अभियान के द्वारा प्रदेश को पुन हस्तगत किया था, परन्तु अनेक मुठभेड़ो में उन्हे क्रान्तिकारियो से हार खानी पडी थी। यह घटना सन् १९३० के अप्रैल मास की है।

क्रान्ति की यह परम्परा वहा नई नही है। चटगाव में मैंने सन् १८५७ के शहीदो का विशाल स्मारक देखा। सिवाय मेरठ के सारे भारत में और कही सन् १८५७ के शहीदो का स्मारक शायद नही है। वह परम्परा अभी मिटी नही है। इसका प्रमाण है चटगाव की सडकें। अधिकाश मुख्य सडको का नामकरण अब वहा मुक्तिवाहिनी के उन शूरवीरो के नाम पर हुआ है जो पाकिस्तानी सेना के साथ सघर्ष में शहीद हो गए।

पाकिस्तानी सेना के अत्याचारो की कहानी के कई अवशेष आज भी वहा मौजूद है।

जिस चट्टेश्वरी देवी के नाम चट्टग्राम नाम पडा, उसी देवी का दो सौ वर्ष पुराना पहाडी पर स्थित मन्दिर आज ध्वस्त है। मन्दिर का पुजारी तथा अन्य निवासी कत्ल कर दिए गए, मूर्ति तोड दी गई, मन्दिर का सब साज- सामान लूट लिया गया। दरवाजे और खिडकिया भी नही बचे।

पाकिस्तानी सेना के अत्याचारो की बानगी के लिए 'प्रवर्तक सघ' अभी तक वहा मौजूद है। वह जैसे अपनी चिता की राख में से पुनर्जन्म लेकर खडा हुआ है।

प्रवर्तक सघ केवल चटगाव के लिए ही नही, सारे बगला देश के लिए गौरव की वस्तु है। उसकी गतिविधिया बहुमुखी है। बिना जातीय या धार्मिक भेदभाव के उसकी सब प्रवृत्तिया नि स्वार्थ कार्यकर्ताओ की लगन का फल हैं। वहा हाई स्कूल है। छात्र और छात्राओ के अलग-अलग होस्टल हैं। चिकित्सालय है। अनाथालय है। पुस्तकालय है। गृहोद्योग सिखाने के लिए हस्तोद्योगशाला है। विज्ञान की प्रयोगशाला है। सर्वधर्म समभाव का घोतक प्रार्थनागृह है। होस्टल में मुसलमान, ईसाई, आदिवासी और हिन्दू सभी हैं।

और बहुमुखी गतिविधियों से समन्वित इस विशाल सस्था की सचालिका हैं दो तरुणिया—कुमारी मीरा सिन्हा और कुमारी अरना

चौधरी—जिन्होंने जनता की सेवा के लिए आजन्म कौमार्यव्रत धारण किया है। उनके साहस का क्या ठिकाना!

इन दोनो तरुणियो को देखकर मुझे बगभूमि की उस वीर-सुता शहीद प्रीतिलता का स्मरण आए बिना नही रहा, जिसने सत्रह साल की उस कोमल वय में, जब लडकिया अपने हाथो में मेहदी रचाने का स्वप्न देखती हैं और माता-पिता अपनी कन्याओ के हाथ पीले करने को आतुर हो उठते हैं, अनेक अग्रेजो को अपनी पिस्तौल की गोली का निशाना बनाया था और अन्त में अपने शील की रक्षा के लिए पोटाशियम साइनाइड खाकर २४ सितम्बर, १९३२ को देश की बलिवेदी पर शहीद हो गई थी।

इसी प्रवर्तक सघ मे मिल गए मुझे ७३ वर्षीय श्री चारुदा। वही चारुदा जो नोआखाली की पदयात्रा मे गाधी जी के साथ थे। आजकल वे नोआखाली के गाधी आश्रम की देखभाल करते हैं। प्रवर्तक सघ की सचालन समिति मे भी है। मुझसे एक दिन पहले ही भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश श्री कृष्णस्वामी ऐय्यर वहा होकर गए थे। चारुदा उन्हींकी अगवानी के लिए नोआखाली से चटगाव आए थे।

चारुदा से मैं प्रश्न करता जाता और वे पाकिस्तानी सेना द्वारा प्रवर्तक सघ के विध्वस की कहानी सुनाते जाते।

होस्टल के छात्र-छात्राओ की रक्षा कैसे हुई? यह पूछने पर उन्होने बताया कि छात्र तो अधिकाश देहात मे अपने किसी रिश्तेदार या परिचित के यहा चले गए, पर छात्राओ को तुरन्त स्थानान्तरित करना सभव नही हुआ। उन्हें क्रिश्चियन पादरी अपने मिशनो मे ले गए। लगभग दो सौ छात्राओ को कई महीनो तक उन्होंने अपने मिशनो मे रखा। उनके निवास और खान-पान की व्यवस्था की। पर उनकी सुरक्षा के लिए हिन्दू नाम बदलकर सबके क्रिश्चियन नाम रख दिए गए और उनसे कह दिया गया कि अपना परिचय क्रिश्चियन नाम से ही देना। अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास सोसायटी ने भी इस काम मे ईसाई पादरियो की भरपूर सहायता की। इस प्रकार प्रवर्तक सघ की छात्राए लकाकाण्ड के उन राक्षसो से बच पाई।

पर स्वय प्रवर्तक सघ राक्षसी कोप मे नही बच पाया।

कुछ दिन तक इसकी इमारतें पाकिस्तानी सेना की बैरकें बनी रही।

सघ की रक्षा के लिए जो लोग तैनात थे, वे सब मार डाले गए। मैनेजर की हत्या कर दी गई। उनके निवास वाला एकान्त कमरा अब सदा बन्द रहता है और महीने मे एक बार सब लोग एकत्र होकर वहा मौन प्रार्थना करते हैं।

सस्था का सब सामान लूट लिया गया। मेज-कुर्सी-दरवाजे-खिडकिया सब ईंधन के काम आए। पुस्तकालय की पुस्तको से हमाम का पानी गरम होता रहा। हस्तोदयोगशाला और विज्ञान की प्रयोगशाला इस तरह तहस-नहस कर दी गई कि तीन साल बीतने पर अब तक भी वे चालू नही हो सकी।

"बगला देश की मुक्ति के बाद सस्था का काम कैसे शुरू हुआ ?" मैंने पूछा।

चारदा बोले—"जब हम यहा लौटकर आए तो स्थान-स्थान पर नरमुण्ड पडे मिले। एक स्थान पर तो १६ नरमुण्ड इकट्ठे गिने गए।" उनकी आखें अपने उन कार्यकर्ताओ की स्मृति मे गीली हो गई।

"सस्था को फिर से चलाने के लिए सरकार ने सहायता की होगी ?" कुछ क्षण रुककर मैंने पूछा।

"हा की। बगबन्धु ने पाच हजार का चेक दिया। अपनी सस्था के कार्य की विशालता देखते हुए हमने इतनी स्वल्प राशि को सर्वथा अपमान-जनक समझा। इसीलिए लौटा दिया। तब पैंतीस हजार का चेक मिला। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास ने क्रिश्चियन मिशन की मार्फत अन्य साज-सामान के अतिरिक्त दो लाख रुपये की सहायता की। तब यह सस्था पुन-जीवित हो सकी।"

गोदी देखने गया जिसके कारण चटगाव 'बग सागर का द्वार' कहलाता है। बन्दरगाह पर १५ विशाल गोदाम बने हुए हैं जिनमे जहाजो से उतार-कर सामान रखा जाता है। दो गोदाम अभी तक ध्वस्त है जो मुक्ति-सघर्ष के दिनो मे भारतीय सेना की अचूक बमबारी की निशानी है। गोदी मे छोटे-बडे कई जहाज खडे थे जिनमे ७००० टन की क्षमता वाला भारत का 'जलमोती' भी था, जो उसी दिन सरसो, सोयाबीन और सूरजमुखी का तेल तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुए लेकर आया था।

इन सब चीजो का बगला देश मे अभूतपूर्व सकट है। कभी बगला देश

'ससार का सबसे सस्ता देश' कहलाता था, पर आज संसार का सबसे मंहगा देश कोई है, तो बगला देश।

'जलमोती' को देखकर इस बात का सबूत तलाश करने की जरूरत नही रही कि भारत तत्परता से बंगला देश के सकट के निवारण मे सहायता कर रहा है।

चटगाव मे बताली हिल, पहाडतली हिल और फँज झील के अलावा वहाँ का विश्वविद्यालय और इजीनियरिंग कालेज भी दर्शनीय हैं।

चटगाव से मैं रगामाटी, कप्ताई और कोक्स बाजार गया। रगामाटी पार्वत्य पथ जिले का मुख्यालय है। शरत ने 'श्रीकान्त' मे जिस रंगामाटी का उल्लेख किया है, वह अलस दोपहरी वाला और शाम को घूमने के लिए दूर तक फैले लम्बे मैंदानो वाला रगामाटी अब लुप्त हो चुका है। आज का रगामाटी केवल सडक के दोनो ओर बसा है, बाकी सारा प्रदेश जलमग्न है।

कप्ताई मे जलविद्युत्-योजना की पूर्ति के लिए कर्णफूली नदी पर बाध बनाकर २६५ मील की कृत्रिम झील तैयार की गई है। रगामाटी भी उसी-के अन्तर्गत आ गया है। चारो ओर दूर तक नील जल का फैलाव मन मोहता है।

कभी कप्ताई और रगामाटी का जलमग्न प्रदेश घने जंगलो से घिरा था और उस जगल मे शेर, चीते और हाथी सुलभ थे। पर अब सडक के दोनो ओर बसी विरल बस्ती को छोडकर बाकी चारो ओर जल ही जल है।

मिजोरम पच्चर की तरह बगला देश मे घुसा हुआ है और रगामाटी से एकदम सटा हुआ है। बर्मा की सीमा यहा से ५-६ मील से अधिक दूर नही। अधिकतर आबादी चक्रमा लोगो की है।

भारत के पूर्वी सीमान्त पर पहाडियो के ऊर्ध्व भाग पर बसी आदिवासियों की चकमा जाति बौद्ध धर्मावलम्बी है। ईसाई पादरियो को जैसी सफलता मिजो और नागा लोगो को ईसाई बनाने मे मिली, वैसी चक्रमा लोगो को लेकर नही। चक्रमा युवक-युवतियो का रग खूब सुन्दर और शरीर हृष्ट-पुष्ट है।

रंगामाटी कभी अलग रियासत थी। चक्रमा राजा भुवनचन्द्र मोहन का १८३६ मे राज्याभिषेक हुआ था, जिसकी सूचना वहा के ध्वंसावशेषो मे

अभी तक खड़े एक शिलालेख से मिलती है। अब उस स्थान पर दो बौद्ध विहार है और वहा बौद्ध भिक्षु रहते हैं।

कौक्स बाजार चटगाव से ६५ मील दूर है। वहा भी विमान से जाने की व्यवस्था है। बगला देश की पथप्रदर्शक पुस्तिका मे चटगाव से कौक्स बाजार तक की सडक की जो तारीफ की गई है, वह सब मिथ्या है। कोई पर्यटक उसपर विश्वास करेगा, तो धोखा खाएगा। कभी ईस्ट इडिया कम्पनी के कप्तान हिरम कौक्स ने इसे बसाया था। अब यह उसीके नाम पर कौक्स बाजार के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कौक्स बाजार के समुद्र तट को ससार का सबसे लम्बा रेतीला समुद्र तट बताया गया है। उसकी लम्बाई ७५ मील है। बर्मा की सीमा यहा से भी बहुत निकट है। यहा की आबादी मे बर्मियों का अपना खास स्थान है। उनकी दुकानें और पगोडा भी शानदार है।

समुद्र तट पर सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। जिस दिन वहा सूर्यास्त की प्रतीक्षा मे 'वक्ष पर युगबाहु बाधे मैं खडा सागर किनारे' का प्रतिरूप बना हुआ था, उस दिन कुछ विदेशी और विदेशिनिया बारी-बारी से सूर्य-स्नान और समुद्र-स्नान का आनद लेने के लिए अपने गोरे रग के पूरे आकर्षण के साथ वहा विराजमान थी। उस दिन समुद्र तट पर सूर्यास्त के दर्शकों के बजाय बिकिनी वेश वाली विदेशि-नियों के दर्शकों की सख्या ही अधिक दिखाई दी।

४

विहारी कहा गए

बगला देश की विमान-सेवा और बस-सेवा के अनुभव के बाद बाकी रह गई थी रेल-सेवा। इसलिए चटगाव से ढाका वापस जाने के लिए रेल की शरण ली।

जन-जीवन के सान्निध्य की खातिर मैं रेल की तीसरी श्रेणी मे ही सफर करना चाहता था। पर तब शायद सफर ही न कर पाता। तृतीय श्रेणी मे आरक्षण की व्यवस्था जो नही थी।

प्रथम श्रेणी के उस छोटे से डिब्बे मे चार शायिकाए थी। चटगाव मे स्टेशन पर ही और यात्री भी अपने भारी-भरकम सामान के साथ उस डिब्बे मे घुस आए।

गाडी चलने के बाद एक सहयात्री ने जो रामू चौमुहानी के [illegible] चाय बागान के मैनेजर थे, उन अतिरिक्त यात्रियो से पूछा—"तुम्हारे पास प्रथम श्रेणी का टिकट है?"

"नही।"

"तब भला इसीमे है कि अगले स्टेशन पर तुम [illegible] जाओ। नही तो, इस समय 'इमर्जेन्सी' है और [illegible] चल रहा है, तुम किसी भी समय मुसीबत मे [illegible]"

उन यात्रियो की समझ मे बात आ गई और [illegible] ही वे उतर गए, पर अपना सामान [illegible] गए—"हमारे सामान का ध्यान रखिए, [illegible]"

उनके उतरते ही उस [illegible] दिया और बाकी हम तीनों यात्रियों [illegible] से सोइए।"

दिन-भर की दौड-धूप के बाद थका हुआ हू और अब आराम से सोना ही चाहता हू। रात के ११ बज रहे है। बर्थ पर बिस्तर खोलकर, रजाई ओढकर लेट जाता हू। रजाई मे घुसने पर लगता है, जैसे बच्चे को मा की गोद मिल गई हो।

यो भी गाडी मे नीद न आने की शिकायत मुझे नही है। बल्कि घर से भी अच्छी नीद आती है। गाडी की आवाज़ लोरी का और उसकी गति झूले का काम करती है।

पर नीद नही आ रही है।

मन मे कोई चिन्ता नही। अन्दर से द्वार अच्छी तरह बन्द होने के कारण कोई खतरा भी नही। फिर थकावट होने पर भी नीद क्यो नही ?

बार-बार करवट बदलकर सोचता हू—'शायद यह 'पोज़' ठीक रहे।' शवासन भी करता हू। पर बात नही बनती।

उठकर बैठ जाता हू। बैठने पर भी चैन नही।

जैसे ऊट की पीठ पर सवारी कर रहा हू। गाडी इतने ज़ोर से हिचकोले दे रही है कि हर क्षण बर्थ से लुढक जाने का अन्देशा है।

रात-भर बैठा भी नही जा सकता।

फिर लेट जाता हू। लुढकने से बचने के लिए ऊपर की बर्थ को साधने के लिए जो जजीर लगी है, उसके हत्थे मे अपना हाथ फसाकर खिडकी की ओर मुह करके आखें बन्द कर लेता हू।

निद्रादेवी ने कब कृपा की, पता नही। पर अचानक जब फिर झटका लगा और नीद खुली तो देखा कि घडी मे ढाई बजे हैं।

अभी तो आधी रात बाकी है।

इच्छा हुई कि एक बार खिडकी खोलकर बाहर का दृश्य देखू।

यहा की आधी रात का चाद कैसा लगता होगा ? कैसा होगा यहा का आकाश ? कैसा होगा यहा का तारामण्डल ? कैसा होगा यहा पौष मास का वातास ?

दिल्ली जैसे महानगर मे रहते हुए तो इन चीजो की ओर कभी ध्यान ही नही जाता।

किसी जक्शन पर गाडी खडी है। कौन-सा स्टेशन है—बगला से

अनभिज्ञ होने के कारण नही जान पाता। सामने की पटरी पर जो गाडी खडी है उसमे चढने वालो की अफरा-तफरी जरूर नजर आती है। गुदडी ओढे, गठरी अपनी बगल मे दबाए, पेंडुकी-सी कुछ अकलाए, एक-एक करके डिब्बो का चक्कर काटती घूम रही हैं। पर उन्हे कही जगह नही मिलती।

कुछ हिम्मती युवक डिब्बे मे जगह न मिलने पर उचककर रेल की छत पर चढ जाते हैं। पर रेल की छत भी मुसाफिरो से भरी है—शुरू से आखीर तक। इस सर्दी मे रात-भर छत पर बैठकर सफर करने वाले इन मुसाफिरो की हिम्मत को बलिहारी!

पौष मास का वातास खिडकी खोले रखने की अनुमति नही देता। शीशा चढा लेता हू। अन्दर से शीशे की ओट से देखने पर लगता है कि आधी रात मे प्रेतलोक की छायाए चारो ओर विचर रही है।

चारो ओर के वातावरण के प्रति आधुनिक सभ्यजनोचित उदासीनता का खोल ओढ लेना चाहता हू। पर मन के कोने से आवाज आती है—'यह तुम्हारे अपने प्रेत की छाया भी तो हो सकती थी!'

ढाका लौटने पर एक परिवर्तन साफ दिखाई दिया। आपात स्थिति की घोषणा के तीन दिन बाद ही सरकार ने उन लोगो को जमीन खाली करने की चेतावनी दी थी जिन्होने गैरकानूनी ढग से सरकारी जमीनो पर कब्जा करके अपनी दुकान या झुग्गी-झोपडी डाल ली थी। जब घोषित अवधि बीत गई और चेतावनी निष्फल सिद्ध हुई, तब पुलिस ने आकर वे सब गैरकानूनी ढाचे गिरा दिए।

चटगाव जाने से पहले रेल की पटरियो और सडको के दोनो ओर के खाली स्थानो पर की सुहागिन वस्ती अब वैधव्य की वीरानी और खामोशी से भरी थी।

गत दो दिनो मे लगभग साढे चार सौ ढाचे गिराए गए थे।

मैंने पूछा कि सरकार की इस कार्रवाई के विरुद्ध कही कोई शिकायत, आन्दोलन, प्रदर्शन या शोर-शराबा? आखिर इतने लोगो की रोजी-रोटी और निवास का प्रश्न तो था ही?

"नही, कही कुछ नही।" इमर्जेन्सी के अन्तर्गत जनता के सब मूलभूत अधिकार भी निरस्त हो गए हैं, इसलिए अदालत मे जाकर सरकार के

विरुद्ध 'स्थगन आदेश' प्राप्त करने की भी कोई नही सोच सकता, आन्दोलन और प्रदर्शन की तो बात ही क्या।

सरकार ने अगली चेतावनी दी थी उन नारो के विरुद्ध जो मुजीब शासन के विरोध मे स्थान स्थान पर दीवारो पर लिखे हुए थे। मुजीब-विरोधी नारो की बात सुनकर बगला देश से बाहर के लोगों को आश्चर्य हो सकता है। पर वे नारे मैंने अपनी आखो से देखे है। ऐसे नारो की सख्या यद्यपि अधिक नही थी, पर उनकी मौजूदगी से इन्कार नही किया जा सकता।

मन मे प्रश्न उठा कि पाकिस्तान के पक्षपाती उन लाखो बिहारियो का क्या हुआ जिन्हे जनता के कोप से बचाने के लिए बगला देश की मुक्ति के बाद शिविरो मे रखा गया था। बगला देश उन्हे रखना नही चाहता था, कोई अन्य देश भी इतनी बडी सख्या को अपने यहा खपाने को तैयार नहीं था। युद्धबंदियो की वापसी के बाद सबसे बडी मानवीय समस्या यही थी।

पाकिस्तान द्वारा बगला देश को मान्यता दिए जाने के बाद लाहौर मे बाग-बधु के, और ढाका मे भुट्टो के, भावभीने स्वागत से यह आशा बधी थी कि खुदा की बन्दगी करते हुए भी 'पाकिस्तान-पाकिस्तान' का नाम रटने वाले इन नमक-हलाल बन्दो को शायद पाकिस्तान सहज स्वीकार कर ले। पर रग बदलने मे *गिरगिट के गुरु जुल्फिकार इतना बडा सिरदर्द* क्यो मोल लेते ? पहले ही इतने सारे सिरदर्द बेचारे की जान जोखो बने हुए हैं। इसलिए 'जमीं जुम्बद न जुम्बद गुल मुहम्मद।'

जिन दिनो बगला देश मे था, उन्ही दिनो अखबारो मे बयान पढा कि अब भुट्टो साहब यथासभव बिहारियो को पाकिस्तान आने की अनुमति देकर इस समस्या को सहृदयतापूर्वक सुलझाने को तैयार हैं।

एकाएक, गुल मुहम्मद मे यह जुम्बिश क्यो आ गई ? या तरबेला के भूकप ने ६,००० लोगो की बलि लेकर जनाब का वैसे ही हृदय-परिवर्तन कर दिया जैसे कलिग-युद्ध ने हजारो की बलि लेकर अशोक का हृदय-परिवर्तन कर दिया था ?

मैं ढाका से लगभग १५ मील दूर स्थित मीरपुर गया, जहा इस्लामाबाद की नकल पर बगला देश की नई राजधानी बनाई जा रही है। वही घद

गया है, अब बगला देश की जनता पाकिस्तान-प्रेमी भले ही न बन गई हो,पर पाकिस्तान-विरोधी नही रही। यों पाक-पक्षपाती एक वर्ग वहा सदा रहा है, पर आम जनता जैसे उदासीन है। और ज्यो-ज्यो बंगला देश की अर्थ-व्यवस्था विनाश के कगार की ओर बढती जा रही है, त्यों-त्यो यह स्वर भी सुनाई देने लगा है कि इससे तो पाकिस्तान ही अच्छा था।

पर मैं इसे पाकिस्तान के प्रति प्रेम का उदय नही कहूंगा। यह ठीक वैसी ही मनोवृत्ति है जैसी उन चन्द भारतीयों मे दिखाई देती है जो यह कहते लज्जा अनुभव नही करते कि इस आजादी से तो अंग्रेजो का राज ही अच्छा था। वर्तमान स्थिति के प्रति असन्तोष प्रकट करने का यह एक मनोवैज्ञानिक, मगर विवेकहीन, उद्गार-भर है।

तो तत्व की बात यह कि 'बिहारियों' की जिस समस्या का इतना हंगामा था, अब वह समाप्त हो चुकी है। इसलिए अब उसके हल का प्रश्न भी पैदा नही होता। तभी भुट्टो साहब ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे अपनी फराख-दिली की धाक जमाने के लिए यह घोषणा कर दी कि वे बिहारियो की समस्या सहृदयता से हल करने के लिए तैयार हैं। वाह रे गिरगिट तेरी चतुराई!

बगला देश-स्थित बिहारियो ने भी अब यह अनुभव कर लिया है कि जिस पाकिस्तान के लिए वे अब तक दिलोजान से कुर्बानी करते रहे, उसे उनकी चिन्ता नही। कैसे हतभाग्य निकले ये लोग! देश-विभाजन के बाद, काफिरो के मुल्क मे न रहना पड़े, इसलिए तो वे पाकिस्तान गए, पर पाकिस्तान के दोनो अगो मे से कही भी उन्हे आत्मीयता नही मिली। पूर्व और पश्चिम दोनो जगह अनादृत। और बगला देश बनने पर तो सर्वथा अवाछित!

ओर भारतमाता ऐसी निर्मम कि अब वह भी अपने इन 'कुपुत्रों' को छाती से लगाने को तैयार नही।

इसलिए गर्दन और मूछें नीची करके, मन मसोसकर, ज़बान पर ताला लगाकर, जहा है वही, अब किसी न किसी तरह गुजर-बसर करने के सिवाय उनके पास कोई चारा नही।

५

अराजकता से त्रस्त और महगाई से पस्त

"बगला देश की हालत कैसी है ?······आपने क्या देखा ?··· ·"

जब दस दिन तक बगला देश के विभिन्न स्थानो की यात्रा करके मै वापस ढाका लौटा, तब जिस किसी राजनेता या सामाजिक नेता से मैं मिलता, वह मुझसे यही सवाल पूछता ।

बगला देश मे घुसते ही मुझे जबान बन्द रखने की सलाह दी गई थी । इसलिए इस प्रकार प्रश्न पूछने वाला के सामने मैं असमजस मे पड जाता ।

एक दिन एक केन्द्रीय मत्री यही प्रश्न पूछ बैठे ।

मैंने अपनी दुविधा को छिपाने के लिए कहा—"जैसी हालत है, वैसी ही देखी है ।"

शायद वे मेरे मन की बात भाप गए हो । बोले—"सुना है कि पत्रकारो की एक तीसरी आख भी होती है, इसलिए सामान्य जन जो नही देख पाते वह भी उन्हे दिख जाता है ।"

मैंने फिर बचाव का रास्ता ढूढा । "पत्रकारो को जबान से नही, कलम से बोलने की आदत होती है ।"

इसपर वे मुस्कराए ।

मेरे साथ बगला देश के एटार्नी जनरल आए थे । उन्होने ही मेरा परिचय दिया था और मत्री महोदय ने भी पूर्व स्वीकृति के बिना भेंट की औपचारिकता की चिन्ता नही की और तुरन्त मुझसे बात करने लगे । मेरे मन पर उनकी इस सज्जनता का असर था । इसलिए जब एटार्नी जनरल और मेरी तरफ एकसाथ देखते हुए अनुनय के-से स्वर मे उन्होंने कहा—"फिर भी···" तब मैंने भी सकोच के साथ कहा—"हालत अच्छी नही है ।"

"क्या आपके यहा के गुजरात से भी खस्ता हालत है ?"—निस्सदेह उनका सकेत छात्र-आन्दोलन के दिनो मे गुजरात मे फैली अराजकता की ओर था।

मैंने कहा—"हा।"

'क्या बगला देश मे आपके बिहार से भी बुरी हालत है ?"—अब उनका इशारा जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन की ओर और उन्ही दिनो समस्तीपुर बमकाड मे श्री ललितनारायण मिश्र की हत्या की ओर था—यह समझने मे मुझे देर नही लगी।

मैंने फिर दृढता से कहा— "हा।"

अब वे थोडा सहमे।

फिर अनायास ही बोल उठे—"हा, कल अगर मुझे यहा खुले बाजार से २०० रुपए मन के भाव से चावल खरीदना पडे तो मैं नही खरीद सकता।"

मैंने भी छूटते ही कहा—"जब एक मत्री का यह हाल है, तब आम जनता की कल्पना तो सहज ही की जा सकती है।"

अब वे ' वी० आई० पी० '' का नकाब उतार, साथी की तरह बात करने लगे। महगई, अल्पसख्यको के साथ होने वाले व्यवहार, तथा चारो ओर फैली अराजकता की चर्चा स्वय ही करने लगे। उनकी एक-एक बात से उस सत्य की पुष्टि हो रही थी जिसका मैंने 'सोनार बागला' के विभिन्न स्थानो की यात्रा करके दर्शन किया था। मुझे इतना ही सन्तोष था कि वह सब मुझे अपनी जबान से नही कहना पडा।

जब भारत की जनता कमरतोड महगाई के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करती है तब सत्तारूढ दल के भोपू यही कहकर जनता को चुप कराना चाहते हैं कि यह तो ससार-भर की समस्या है, अकेले भारत की नही, इसलिए भारतीयो का शोर मचाना अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को न समझने का परिणाम है।

पर बगला देश मे इस समय चीजो के जो भाव हैं, उनका जिक्र करने पर, सभव है, स्वदेशवासी उसपर विश्वास ही न करें।

बगला देश जाने से पहले कलकत्ता मे जब मुझे इस स्थिति की कुछ भनक पडी थी तो मैं स्वय विश्वास नही कर सका था पर जब स्वय आखो से देख लिया तब आख और कान का विवाद शान्त हो गया।

कुछ चीजो के भाव देखिए

चावल	८/- रु० सेर
नमक	७/- रु० सेर
चीनी	१६/ रु० सेर
गुड	१२/- रु० सेर
दाल	६/- रु० सेर
हल्दी	१२ से १५/- रु० सेर
मिट्टी का तेल	८ से २०/- रु० सेर
सरसो का तेल	४० से ५०/- रु० सेर
दही	२०/- रु० सेर
लालमिर्च	८/- रु० छटाक
जीरा	६/- रु० छटाक
केला	१२/- रु० दर्जन
सन्तरा	४२/- रु० दर्जन
सदेश	१२/- रु० दर्जन
जलेबी	१८/- रु० दर्जन
कपडे धोने का साबुन	४/- रु० की एक बट्टी
नहाने का साबुन	५½/- रु० की एक बट्टी

इसी सूची को और लम्बा न करके स्थिति की भयावहता के दिग्दर्शन के लिए इतना ही बताना काफी है।

तुरन्त प्रश्न किया जाएगा कि जब मत्री भी चावल बाजार से खरीदकर नही खा सकते, तब सामान्य जनता इन भावो के रहते गुजर कैसे करती होगी ?

इसका उत्तर अपनी ओर से न देकर मैं ढाका के एक वरिष्ठ और बुजुर्ग अधिवक्ता के शब्दो में दूगा।

उन्होने एक दिन बातचीत के दौरान कहा—"पत्रकार महोदय! आपके देश मे तो अभी 'गरीबी हटाओ' का नारा ही गूज रहा है, पर हमने अपने देश मे से गरीबी खत्म कर दी है।"

मैं स्तब्ध होकर उनके मुह की ओर देखू कि इतने मे स्वय ही अपनी सूक्ति

पर भाष्य करते हुए बोले—"इस समय बगला देश की स्थिति एसी है कि यहा गरीब रह ही नही सकता।"

और उनकी यह बात सुनकर मेरे सामने ढाका के हवाई अड्डे पर, सोनाली बैंक के बाहर पटरी पर, मोती झील के प्रमुख फैशनेबल व्यापारिक क्षेत्र मे, आयातित सामान से लदे चटगाव के खास बाज़ार के अन्दर और बाहर हर बस-अड्डे और रेल-स्टेशन पर, एव आम सडको पर, किसी भी खाद्य पदार्थ के लिए अपनी नगी हथेली फैलाए उन भिखारियो की भीड उपस्थित हो गई जिनके पास सिवाय भीख के लिए हाथ फैलाने के और कोई चारा नही रहा था। इन निरीह लोगो को बगला देश के देहात से खीच कर किस प्रकार पेट की आग शहरो की ओर भगा रही है, और बगला देश के शहरो मे भी जब गुजारा नही चलता तब किस प्रकार वैध और अवैध उपायो से उनके ठट्ठ के ठट्ठ सीमा पार करके भारतीय प्रदेश मे प्रवेश कर रहे हैं और 'इमर्जेन्सी' के बाद से कलकत्ता के फुट पाथो पर भिखारियो की सख्या अप्रत्याशित रूप से क्यो बढ गई है—इन सबका उत्तर अनायास मिल गया।

तुरन्त एक और लगता प्रश्न किया जाएगा कि बगला देश के शहरो मे आखिर १२/-रु० दर्जन के भाव के केले, ४२/-रु० दर्जन के भाव के सन्तरे, ८०/-रु० सेर के भाव के सेब और १००/-रु० सेर के भाव के अगूर खाने वाले लोग अगर नही हैं तो ये चीज़ें वहा बाजार मे बिकती ही क्यो हैं?

किसने कहा कि इन चीजो के खरीदार नही है? असलियत यह है कि इस समय बगला देश मे दो प्रमुख वर्ग हैं—एक भिखारियो का और दूसरा उन नवधनपतियो का जिन्होने तस्करी और काले धन के बल पर अपनी समानान्तर सरकार बना रखी है। जिनके पास बेहिसाब पैसा आता है उन्हें बेहिसाब पैसा खर्च करने मे दर्द भी नही होता।

बगला देश के दही की मैंने बहुत तारीफ सुनी थी। एक दिन उसका स्वाद लेने के लिए मैंने हलवाई से एक रुपये का दही मागा। उसने एक रु० का दही देने से मना कर दिया और कहा कि कम से कम सवा रु० का (एक छटाक) दही मिल सकता है।

तभी मैंने देखा कि एक सज्जन आए और नकद ८०/- रुपए देकर चार सेर दही की हाडी हलवाई से लेकर चलते बने।

मैं देखता रह गया।

(यह स्मरणीय है कि कानूनन भारतीय रुपया मूल्य की दृष्टि से बंगला-देश के रुपये के बराबर है।)

ये नवधनाढ्य लोग कौन है ? क्या केवल व्यापारी ? या राजनेता भी ? हा, चतुर व्यापारी और उनसे साठ-गाठ रखने वाले राजनेता—दोनो।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि नवधनाढ्यो मे सबसे अधिक सख्या सत्तारूढ दल के लोगो की है। पिछले तीन सालो मे नये लखपतियो की जो बडी जमात पैदा हो गई है, वह वही है जो लाइसेंस-परमिट देने वाली है या लेने वाली है। तस्करी और कालाबाजार मे भी इन दोनो वर्गों की समान साझेदारी है।

इस तथ्य ने उस रहस्य पर से भी पर्दा हटा दिया जिसके कारण बंग-बन्धु को आपात स्थिति घोषित करने के लिए विवश होना पडा। आपात स्थिति घोषित करने का मुख्य और तात्कालिक कारण था, अराजकता। यह अराजकता इतनी अधिक बढ गई थी कि आम तौर पर यह कहा जाने लगा था कि ढाका के बाहर प्रशासन का कही नाम भी नही है और ढाका शहर के अन्दर भी शाम के ५ बजे के बाद भले घरो की स्त्रियो का बाहर निकलना खतरे से खाली नही है।

इस अराजकता की ही औलाद हैं—लूट, अपहरण, बलात्कार, डकैती, आगजनी और हत्या। यह अराजकता कितने बडे पैमाने पर है, इसका अनुमान इस बात से लगाइए कि गत तीन वर्षों मे बंगला देश मे ११ हजार व्यक्तियो की हत्या हुई है और विभिन्न अपराधो के सिलसिले मे डेढ लाख व्यक्ति गिरफ्तार किए गए है। उनकी सख्या कितनी है जो अपराधी होने पर भी गिरफ्तार नही किये जा सके, यह पता नही। इन अपराधियो मे निस्सदेह उन असामाजिक तत्वो की सख्या भी कम नही है जिन्हे गत वर्ष बंगला देश के मुक्तिपर्व के उपलक्ष्य मे बंगबन्धु ने जेलो से छोडने की उदारता दिखाई थी।

पटसन की मिलो और गोदामो को आग की भेंट कर देना, बसो, रेलो, और नावो को चाहे जब लूट लेना, पटरिया उखाड देना और थानो पर हमला करके हथियार छीन लेना—ये आये दिन की बातें हैं।

घोडासाल उर्वरक कारखाने को आग लगा दी गई जिससे कृषि की पैदावार मे भारी हानि पहुची। ईद के दिन (२५ दिसम्बर, ७४) मस्जिद मे नमाज पढते हुए ससदसदस्य गुलाम किबरिया को और नाथापूत यूनियन के अध्यक्ष डा० अब्दुल कलाम आजाद को सरे आम दिन-दहाडे गोली से उडा दिया गया और हत्यारे पकडे नही जा सके। जब मैं ये पक्तिया लिख रहा था तब भी यह समाचार आया कि अब्दुल खालिक नामक एक अन्य ससत्सदस्य की हत्या कर दी गई। इस प्रकार तब तक कुल मिलाकर ६ ससत्सदस्य मारे जा चुके थे।

बगला देश मे चारो ओर फैली इस अराजकता का एक विचित्र पहलू और भी है। वहा राजनैतिक दलो की सख्या कम नही है और प्राय सभी राजनैतिक दलो के अपने निजी सशस्त्र सगठन भी हैं। बाढ और अकाल के कारण गतवर्ष जो भयकर भुखमरी फैली, और जिसमे सरकारी आकडो के अनुसार २७ हजार और गैर सरकारी आकडो के अनुसार तीन लाख लोग मारे गए, उसने भी इन सशस्त्र सगठनो को 'तग आमद बजग आमद' बना दिया।

पर जिस विचित्र पहलू की ओर मेरा ध्यान गया वह यह था कि हत्या किए जाने वाले लोगो मे तीन हजार व्यक्ति उस अवामी लीग के थे, जो वहा सत्तारूढ दल था।

सत्तारूढ दल के सदस्यो के प्रति ही जनता का इतना भीषण रोष क्यो ?

तब मुझे गाधी याद आया। कितना दूरदर्शी और पक्का ज्योतिषी था वह लगोटी वाला। जब भारत मे काग्रेस ने शासन की बागडोर अपने हाथ म सभाली थी और महात्मा से इसके लिए आशीर्वाद मागा था, तब उस बेलाग फकीर ने कहा था—"हकूमत की कुर्सी बेशक सभालो, पर काग्रेस के त्याग-तपस्या वाले आदर्श को भुलाकर यदि तुमने विलासितापूर्ण जीवन का आदर्श जनता के सामने पेश किया, तो याद रखो, एक दिन ऐसा भी आएगा जब जनता चुन चुनकर काग्रेसियो को मारेगी।"

मुझे लगता है कि बगला देश मे वह दिन आ गया था जब जनता चुन-चुनकर सत्तारूढ दल के लोगो को अपने कोप का भाजन बना रही थी। इसी अराजकता से उद्धार के लिए वहा आपात स्थिति घोषित हुई।

ढाका मे, राजनीति के एक अनुभवी और प्रौढ अध्येता ने, बगला देश

की वर्तमान स्थिति की समीक्षा करते हुए कहा था—"मुझे लगता है, बंगला देश में एक और क्रान्ति होने वाली है।"

मैंने पूछा—"कब ?"

उसने कहा—"कब का तो मैं उत्तर नहीं दे सकता। न ही यह कह सकता हूं कि उस क्रान्ति का स्वरूप क्या होगा। पर मुझे लगता है कि वाता-वरण से उस क्रान्ति की गंध अवश्य आ रही है।"

इस वार्तालाप के लगभग दो सप्ताह बाद ही बंगबन्धु न केवल बंगबन्धु और राष्ट्रपिता ही रहे, वे राष्ट्रपति भी बन गए। संविधान में परिवर्तन करके जनता के अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर अंकुश लगा दिया गया और सब राजनैतिक दलों को भंग करके केवल एक राजनैतिक दल—बंगला देश कृषक श्रमिक दल—की घोषणा हो गई।

बंगबन्धु ने बंगला देश की मुक्ति के बाद इसे द्वितीय महत्त्वपूर्ण क्रान्ति कहा था।

उस प्रौढ़ राजनैतिक अध्येता का क्या इसी क्रान्ति से अभिप्राय था ?

६

जीवट के लोग

सन् १८८० मे वसु-परिवार मे एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया सूरजकुमार। बचपन मे ही पिता का साया सिर से उठ गया। पर बालक था होनहार और परिश्रमी। उसने विद्याध्ययन मे अपनी ओर से कसर नही छोडी।

ढाका विश्वविद्यालय से किसी तरह बी० ए० पास कर यह अनाथ किशोर अहमदाबाद पहुच गया। वहा एक सहृदय व्यक्ति थे केशवलाल मेहता। नीतिकार कहते हैं :

कनक - कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
यह खाए बौराए नर वह पाए बौराय॥

पर मेहता इससे ठीक उल्टे थे। एक कपडा मिल के मैनेजर थे। अभिमान उन्हे छू नही पाया था। युवको को सदा आगे बढाने के लिए सचेष्ट रहते थे। किशोर सूरजकुमार ने उनकी शरण ली। उन्हे उसमे होनहार होने के लक्षण दिखाई दिए।

मेहता ने अपने घर मे रखकर सूरजकुमार को कपडा मिल-सम्बन्धी समस्त प्रशिक्षण दिया और प्रशिक्षित हो जाने पर अपने आशीर्वाद के साथ ढाका के लिए विदा किया।

उसी अनाथ बालक सूरजकुमार ने आगे जाकर ढाका मे ढाकेश्वरी काटन मिल की स्थापना की (सन् १९२७ मे) और धीरे-धीरे वह भारत के इस पूर्वी भाग के प्रमुख उद्योगपतियो मे गिना जाने लगा।

उद्योगपति बन जाने पर भी श्रमिको के हितो की उसने कभी उपेक्षा नही की। श्रमिको के बालक-बालिकाओ की शिक्षा के लिए उसने दो हाई स्कूल और दो प्राइमरी स्कूल खोले। एक कालेज खोला। एक रात्रि-पाठशाला खोली।

कर्मचारियों के लिए मिल के अन्दर ही उनने तरणताल, क्लब, थियेटर, खेलने का मैदान और एक मस्जिद तथा मन्दिर का भी निर्माण करवाया।

सूरजकुमार ने अपने गुरु और आश्रयदाता की स्मृति में उन्हीं के नाम पर अपने यहां के कर्मचारियों को टेक्निकल ट्रेनिंग देने के लिए केशवलाल टेक्निकल इंस्टीट्यूट खोली थी, मिल में काम आने वाली कई छोटी-मोटी मशीनों का उसी इंस्टीट्यूट में निर्माण होता था। उसी इंस्टीट्यूट में गांवों के लिए अम्बर चर्खे भी बनते थे।

देश का विभाजन होने के बाद इस व्यक्ति की औद्योगिक प्रतिभा का पाकिस्तान की सरकार ने भी यथोचित सम्मान किया। करती भी क्यों न। आखिर पूर्वी पाकिस्तान की समृद्धि में ढाकेश्वरी काटन मिल का अपना महत्वपूर्ण स्थान था।

इस मिल की वार्षिक बिक्री थी दो करोड़ सत्रह लाख रुपये। सूरजकुमार सरकार को ८३ लाख रुपये टैक्स के रूप में चुकाते थे। इस मिल में ६ हजार कर्मचारी काम करते थे और इन कर्मचारियों का मासिक वेतन का बिल बनता था—पचपन लाख रुपये का।

पाकिस्तान सरकार की ओर से जो औद्योगिक प्रतिनिधिमण्डल रूस, इंगलैंड और जापान आदि देशों की औद्योगिक गतिविधियों का अध्ययन करने के लिए गया था, उसका नेतृत्व सूरजकुमार ने ही किया था। १५ जून, १९६३ को सूरजकुमार का स्वर्गवास हो गया।

इस सूरजकुमार का पुत्र है सुनीलकुमार वसु। परिश्रम, कर्तव्यनिष्ठा और औद्योगिक प्रतिभा में अपने पिता के ही सर्वथा अनुरूप।

सुनीलकुमार वसु ने अपने पिता के जीवन-काल में ही आदर्श काटन मिल्स नाम से स्वतंत्र रूप से एक अलग मिल की स्थापना की थी। इस मिल ने भी पूर्वी पाकिस्तान की औद्योगिक समृद्धि में और लोगों को रोजगार देने में अच्छा योग दिया था। पाकिस्तान सरकार ने श्री वसु की सेवाओं से प्रभावित होकर उन्हें 'तमगा-ए-पाकिस्तान' के खिताब से सुभूषित भी किया।

वसु-परिवार की सैंकड़ों एकड़ भूमि देहात में थी। ढाका शहर में ३५ मकान थे। सुनील काली का ऐसा भक्त था कि हर वर्ष दुर्गापूजा के अवसर पर भारी मेला जुटाता। कथा-वार्ता और कीर्तन की धूम रहती। मेले में

शामिल हजारो लोगो के भोजनाच्छादन की निश्शुल्क व्यवस्था उसकी ओ
से की जाती थी।

परन्तु समय सदा एक-सा नही रहता। जिस सुनीलकुमार वसु नामक व्यक्ति का मैंने ऊपर जिक्र किया है, पाकिस्तान की सरकार ने उसपर राज द्रोह का आरोप लगाकर उसे गिरफ्तार कर लिया। सात साल की सख्त सजा दी और पचास लाख रुपये जुर्माना किया। जेल मे उसे इतना कष्ट दिया गया कि वह सूखकर काटा हो गया—उसका ८० पौंड वजन कम हो गया। हड्डियो का पिंजर रह जाने पर सबने उसके जीवन की आशा छोड दी।

परन्तु जब सन् १९७१ के दिसम्बर मास मे याह्याखा के पैशाचिक पजे से मुक्ति के लिए अपनी जान की बाजी लगाते मुक्तिवाहिनी के सैनिको की सहायता के लिए भारत ने अपना सुनियोजित सैनिक अभियान प्रारम्भ किया तो सुनीलकुमार के अस्थि-कंकाल मे भी शनै -शनै बुझती प्राण शिखा पुन प्रदीप्त हो उठी। उसके आस्थावान् अन्त करण ने यह अनुभव किया कि घटनाचक्र के इस रूप-परिवर्तन मे अवश्य कही दैवी विधान का अश है।

दैवी विधान की यह फिलासफी भी कैसी विचित्र है ! उसके पीछे किसी तर्क को ढूढना बेकार है। जिनको इस प्रकार की आस्तिक बुद्धि मिली है, वे स्वय भी उसके सबध मे कभी बहस करने को तैयार नही होगे। पर उन्हे इस दैवी विधान मे आस्था इतनी अधिक होती है कि अपने अस्तित्व से भी अधिक वे इसके अस्तित्व मे विश्वास करते हैं।

दैवी विधान मे आस्था का ही प्रमाण इसे समझना चाहिए कि एक दिन ऐसा आया जब कि वसु के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी—जैसे निदाघ-दग्ध पुष्प-वल्लरी पर अचानक मेघ के अमृत-बिन्दु पड गए हो।

१५ दिसम्बर, १९७१।

और सुनील रात-भर हसता रहा, मस्ती मे झूमता रहा, जेल के सब साथियो को सुना-सुनाकर जोर से कहता रहा—'कल बगला देश आजाद हो जाएगा।······कल बगला देश आजाद हो जाएगा। हम जेल से छूट जाएगे····· कल हम जेल से छूट जाएगे।"

जेल के अन्य बंदी हस्बमामूल रात को आराम से सोना चाहते थे। पर

सुनील का अट्टहास किसीको सोने दे, तब न।

जेल के अधिकारियों से शिकायत हुई।

जेलर आया।

जेल का सुपरिटेण्डेण्ट आया।

सुनील का अट्टहास बंद नहीं हुआ।

बंद नहीं हुई उसकी यह घोषणा—कल बंगला देश आज़ाद हो जाएगा • कल हम जेल से छूट जाएंगे।

जेल के अधिकारियों ने सुनील को समझा-बुझाकर और डरा धमकाकर चुप कराना चाहा।

पर वह शांत नहीं हुआ।

वह अपनी दैवी घोषणा करता ही रहा।

लोगों ने समझा कि यह पागल हो गया है।

और यह लो, १६ दिसम्बर, १९७१ का दिन आया कि पागल की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गई।

पाकिस्तानी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। पश्चिमी पाकिस्तान से पूर्वी पाकिस्तान अलग हो गया। पाकिस्तान टूट गया।

संसार के मानचित्र पर स्वतंत्र बंगला देश का उदय हो गया और राजद्रोह के अपराध में बंदी सुनीलकुमार वसु तथा उसके अन्य साथियों को जेल से छोड़ने का हुक्म हो गया।

जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट भागा भागा आया। उसने सुनील वसु के चरणों को हाथ लगाकर श्रद्धा-विगलित स्वर में कहा—'दादा! सच-सच बताना कि कल ही तुम्हें कहां से पता लग गया था कि आज बंगला देश आज़ाद होने वाला है और तुम जेल से छूटने वाले हो!"

दादा ने आसमान की ओर इशारा किया और आंखें बंद कर लीं।

दैवी विधान में उसकी आस्था और पक्की हो गई।

हां, सुनील वसु छूट गया।

पर छूटकर अब जाए कहां?

कहा गए उसके ३५ मकान ? कहा गई उसकी सैकडो एकड भूमि ? कहा गई उसकी मिल ? कहा गए उसके आश्रय मे पलने वाले हजारो कर्मचारी? कहा गया उसका परिवार—उसके बच्चे-बच्चिया, भाई ? जिस आलीशान कोठी मे वह और उसका परिवार रहता था, वह कोठी क्या हुई ?

सबपर गैरो ने गैरकानूनी ढग से कब्जा कर लिया। इन गैरकानूनी कब्जा करने वालो को पुलिस और प्रशासन की पूरी शह थी। सुनील बसु के ज़िदा बचने की उम्मीद किसीको थी नही। पाकिस्तानी पुलिस और पाकिस्तानी प्रशासन ने परिवार वालो का भी जीना जब हराम कर दिया, तब वे सब भी अपनी जान बचाने के लिए कलकत्ता चले गए।

पर पाकिस्तान के विघटित हो जाने के बाद नवोदित 'सोनार बागला' मे जेल से छूटकर, स्वतत्र हवा मे स्वतत्रतापूर्वक सास लेने का अधिकार पाकर सुनील बसु को क्या मिला ?

सच तो यह है कि उसने जिन्दा बचे रहकर उन सबकी आशाओ पर तुषारपात कर दिया जिन्होने उसकी ज़मीन-जायदाद पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया था।

रहने के लिए कही कोई स्थान नही। गुजारे का कोई साधन नही। जो कभी करोडपति था, आज वह कौडीपति भी नही। जो हजारो लोगो के भोजनाच्छादन की व्यवस्था करता था, अब स्वय उसके रहने-सहने का कही कोई ठिकाना नही। जो दान-पुण्य मे लाखो लुटाता था, अब वह सचमुच दाने-दाने का मुहताज। सही अर्थों मे दर-दर का भिखारी, दरवेश।

इससे तो अच्छा था कि वह जेल से छूटता ही नही। जेल मे रहने और खाने की व्यवस्था तो थी। या अच्छा होता कि कैद से छूटने से पहले या उसके बाद वह जिन्दगी की कैद से भी छुटकारा पा लेता।

क्या अब भी तुम्हारी दैवी विधान पर आस्था बनी रहेगी !

सुनील बसु ! बोलो, तुम खुद ही बोलो। जिस दैवी विधान पर तुम्हारी इतनी अटूट आस्था है, क्या वह दैवी विधान सचमुच वही है ? या वह दैवी विधान तुमपर मुसीबत का पहाड ढहाने के लिए है ?

६४ वर्षीय सुनील बसु हाड-मास से नही बना। वह लोहे से बना है। अब भी अस्थि-कंकाल से अधिक नही है, पर उसमे न जाने कहा से इतना ओज

और तेज भरा है कि दैवी विधान मे अब भी उसकी आस्था अडिग है। परिवार वाले कलकत्ता बुलाते हैं तो वहा भी नही जाता। कहता है—"बगला देश मेरी मातृभूमि है, मैं अपनी मा की गोद छोडकर कैसे जा सकता हू।" मुसीबत पर मुसीबत सहना मजूर, पर न तो बगला देश छोडना मजूर, न ही गर्दन नीची करना मजूर।

जेल से छूटने के बाद एक बार किसी समारोह मे बगबन्धु शेख मुजीबुर्रहमान से भेंट हो गई। बगबन्धु पर श्री वसु के उपकारो की गिनती नही। अपने राजनैतिक कार्यो के लिए जब भी कभी उन्हे पैसे की जरूरत होती, तुरन्त वे सुनील के पास पहुच जाते और कहते "दादा! इतना पैसा चाहिए।" और सुनील बाबू उन्हे कभी खाली हाथ न लौटाते। उन्ही उपकारो का स्मरण करते हुए और कृतज्ञता-ज्ञापन का-सा भाव प्रदर्शित करते हुए बगबन्धु ने पूछा—"कहिए दादा, कैसे हैं ?"

इस प्रश्न मे ही जैसे यह भाव भी छिपा था कि अब तो मैं प्रधान मत्री हू, इसलिए मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइए।

पर सुनील बाबू का स्वाभिमानी मन वहा भी अपनी आन से नही डिगा। उसने इतना ही कहा—"सब ठीक है।"

सुनील बाबू के एक परिचित व्यक्ति भी वहा खडे थे। उनसे नही रहा गया। उन्होंने बगबन्धु से कहा—"शेख साहब, दादा के साथ तो इतना अन्याय हुआ है कि उसकी मिसाल कही ढूढे नही मिलेगी।"—और यह कहकर उन्होने सुनील बाबू के साथ हुई ज्यादती का सक्षेप से वर्णन कर दिया।

बगबन्धु ने दातो तले अगुली दबा ली और दादा के सामने विनीत क्षमा-याचना करते हुए कहा—"दादा! मुझे बिल्कुल पता नही था कि तुम्हारे साथ इतनी ज्यादती हुई है। मुझे सचमुच ही बहुत दुख है।"

फिर बगबन्धु ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाकर कहा—"देखो, तीन दिन के अन्दर-अन्दर दादा जिस मकान मे रहा करते थे, वह उन्हे मिल जाना चाहिए।"

पर उस घटना को भी तीन साल से ऊपर हो गए। दादा का निवास-

स्थान दादा को नही मिला।

इसका क्या अर्थ समझा जाए ?

क्या बगबन्धु ने दादा के सामने मुहदेखी बात कह दी—और मन से वह ऐसा नही चाहते थे ? या बगबन्धु मन से वैसा चाहते तो थे, परन्तु प्रशासन इतना शिथिल था कि वह उनकी इच्छा पूरी नही कर सका ? या जिस व्यक्ति ने दादा के निवास-स्थान पर कब्जा कर रखा था वह इतना प्रभावशाली था और उसने अफसरो का मुह चादी से इस तरह भर रखा था कि वहा प्रधान मत्री की इच्छा भी धरी की धरी रह गई ?

मैंने दादा से पूछा—"तो तुम बगबन्धु से फिर क्यो नही मिले ?"

दादा का स्वाभिमान बोला—"मैं क्यो मिलता ? प्रधान मत्री को अपने वचन के पालन का खुद ही ध्यान रखना चाहिए।"

मकान नही, जमीन नही, जायदाद नही, आमदनी का कोई साधन नही। फिर दादा अब तक जिदा कैसे है ?

जेल से छूटने के बाद कुछ अर्से तक रामकृष्ण मिशन के आश्रम मे रहे। इस बीच अपने मकान, जमीन और जायदाद की वापसी के लिए अदालत मे दरखास्त दी और गैरकानूनी कब्जा करने वालो के विरुद्ध दावा दायर किया। सिविल कोर्ट मे केस चल रहा है। पेशिया हो रही हैं। पता नही केस पन्द्रह साल तक चलेगा या बीस साल तक, या पचास और सौ साल तक। पता नही, दादा भी तब तक रहेगे या नही।

मुझे नवाब शाइस्ताखा के उस वशज की याद आती है जो इस समय सरकार के किसी महकमे मे चपरासी है, जिसके पुरखो ने सत्रहवी सदी मे ढाका का किला ईस्ट इडिया कम्पनी को १५ रुपये मासिक किराये पर दिया था और जिससे सम्बद्ध कागजात अभी तक उस चपरासी के पास सुरक्षित हैं। उसने भी किले पर अपना कब्जा पाने के लिए सरकार पर दावा कर रखा है।

पर यह साढे तीन सौ साल पुरानी बात है। सामतवादी युग की घटना है। और उसमे चपरासी का स्वभुजोपार्जित कुछ नही है। पर दादा का केस तो आज के प्रजातन्त्री युग का है और दादा का सब कुछ स्वभुजोपार्जित है। फिर भी वे इससे वचित हैं। उन्हे कभी न्याय मिल पाएगा—इसमे

दाव है। पर दादा गजब जीवट के आदमी हैं। वे राणा प्रताप की तरह जीते जी हार मानने को तैयार नहीं हैं।

दादा जिस कोठी में रहा करते थे, उसपर बेदाव गैरों का कब्जा है, पर कोठी के सामने ही, कुछ फुट के फासले पर, दादा ने अपने माली, रसोइये तथा चौकीदार आदि के रहने के लिए जो स्थान बना रखा था, उसपर गैरों का कब्जा नहीं हो पाया था। वहां अब भी दादा के ये पुराने सेवक ही रहते हैं।

अब दादा ने भी, सेवाग्राम में बापू की कुटिया की तरह, अपनी एक छोटी-सी, सीधी-सादी कुटिया वहां बना ली है। उसी जमीन में साग-भाजी पैदा हो जाती है। एक टुकड़े में खेती भी होती है। एक गाय भी रखी हुई है। दादा के पुराने सेवक वैसे ही वफादार हैं।

और दादा का स्वाभिमान ज्यों का त्यों कायम है।

कुदरत भी कहती होगी कि कैसे जीवट के लोगों से पाला पड़ा है।

७

अल्पसंख्यकों का भविष्य

देश के विभाजन के लिए यह दलील दी गई थी कि इसके बिना अल्पसंख्यकों की समस्या का और कोई समाधान नही है। जो लोग इस तर्क से सहमत नही थे, उन्होंने भी मुस्लिम लीग द्वारा अग्रेजों की शह से पैदा की गयी परिस्थितियों से विवश होकर विभाजन को स्वीकार कर लेने मे ही कल्याण समझा था।

पर विभाजन हुए चौथाई सदी बीत जाने पर भी अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान नही हुआ। पश्चिमी पाकिस्तान के अल्पसंख्यक पूर्णतः भारत, और पूर्वी पंजाब के अल्पसंख्यक पूर्णतः पश्चिमी पाकिस्तान चले गए। उत्तरप्रदेश के बड़े-बड़े जमींदार तथा नवाबी खानदान के लोग एवं कट्टर मुस्लिम लीगी भी पाकिस्तान चले गए। परन्तु शेष ८-९ करोड मुसलमान भारत मे ज्यों के त्यों बने रहे।

पूर्वी बंगाल के कुछ अल्पसंख्यक बड़े जमींदार कलकत्ता या पश्चिमी बंगाल मे आ गए। उस रिक्तता को भरने के लिए उनसे कही अधिक संख्या मे बिहारी मुसलमान पूर्वी बंगाल पहुंच गए। परन्तु पूर्वी बंगाल के शेष अल्पसंख्यक—जिनकी संख्या एक करोड से अधिक थी—वहां ज्यों के त्यों बने रहे। उस समय उनके वहां बने रहने का सबसे बड़ा आधार यह था कि पाकिस्तान के प्रवर्तक कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना ने अल्पसंख्यकों को सुरक्षा का पूरा आश्वासन दिया था।— जिस प्रकार भारतीय नेताओं ने भारत स्थित अल्पसंख्यकों को पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया था।

भारत ने शुरू से ही सम्प्रदाय-निरपेक्षता को अपने संविधान का मूल स्तम्भ माना, क्योंकि उसकी मान्यता थी कि सब नागरिकों के साथ समान बर्ताव होना चाहिए, सबको न्याय मिलना चाहिए और सबको उन्नति का समान अव-

सर मिलना चाहिए। भारत की यही सास्कृतिक परम्परा भी थी जो सदियो से चली आई थी।

परन्तु घृणा से जन्मा और ईर्ष्या से परवान चढा पाकिस्तान सम्प्रदाय-निरपेक्षता को न अपने सविधान मे स्थान दे सका, न अपने व्यवहार मे। इतना ही नही, घृणा सदा घृणा को जन्म देती है और प्रेम प्रेम को, इसलिए पाकिस्तान की घुट्टी मे पडी यह घृणा स्वय हल्के विष की तरह बढते-बढते उसके राजनैतिक शरीर का कैसर बन गई।

पाकिस्तान मे यह क्षुद्रहृदयता और सकीर्णता इस हद तक बढ गई कि पजाबी मुसलमान—जिनका पाकिस्तान की सेना मे और पाकिस्तान की राजनीति मे वर्चस्व था, समस्त गैर-पजाबी मुसलमानो से भी घृणा करने लगे। न उन्हें सिन्धी सुहाये, न पठान, न बलोच, न बगाली। पाकिस्तानी हुक्मरानो की दृष्टि मे ये सब निचले दर्जे के नागरिक थे। जब पाकिस्तानी शासको की दृष्टि मे गैर पजाबी मुसलमानो की यह स्थिति थी, तब पूर्वी बगाल के हिन्दुओ के प्रति उनका क्या रवैया रहा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

बगला देश के वित्त सचिव श्री कमल भूषण चौधरी ने स्वेच्छा से पाकिस्तान का वरण किया था। देश के विभाजन से पूर्व वे उच्च सरकारी पद पर थे। विभाजन के समय जब सब सरकारी अफसरो के सामने यह विकल्प रखा गया कि जो भारत मे रहना चाहें, वे भारत मे रहे और जो पाकिस्तान जाना चाहें, वे पाकिस्तान चले जाए, किसीकी सर्विस पर कोई आच नही आएगी, तब उन्होंने पाकिस्तान सरकार की सेवा मे जाना स्वीकार किया।

मैंने पूछा—"इस निश्चय का कारण ?"

वे बोले—"एक तो कायदे-आज़म का सब नागरिको के साथ समान बर्ताव का आश्वासन, और दूसरे यह कि नई चुनौतियो को स्वीकार करने मे एक 'एडवेंचर' भी तो है।"

'तो यो कहिए न कि 'एडवेंचर' का आनन्द लेना चाहते थे।"

कमल भूषण बोले—"सचमुच। 'एडवेंचर' का आनन्द लेने की क्षमता का नाम ही तो जवानी है।"

"बस सिर्फ एडवेंचर ही ?"

"नही, सिर्फ एडवेंचर नही। बल्कि यही यह लालसा भी मन मे छिपी थी कि पाकिस्तान नया देश है, वहा प्रशासनिक अनुभव से सम्पन्न व्यक्तियों को तरक्की का जल्दी और अच्छा अवसर मिलेगा।"

"यह तो लालच की बात हुई ?"

"हा, आप इसे लालच कह सकते हैं, पर मैं इसे दुनियादारी कहना पसंद करूगा।"

"तो यो कहो न कि दुनियादारी तुम्हारे भारत-प्रेम पर हावी हो गई ?" मैंने कहा।

पर कमल भूषण विचलित नही हुए। उसी प्रकार स्थिरता से बोले—"मेरे निर्णय को आप गलत कह सकते हैं, पर नीयत पर लाछन न लगाएं। सच कहू, तो अपनी जवानी के दिनो मे मैंने भी भारत की स्वतन्त्रता के स्वप्न देखे थे और 'वन्देमातरम्' मे जिस भारतमाता की वन्दना की गई है उसकी मैंने भी वन्दना की थी। पर भारत के भौगोलिक रूप के बजाय मैंने भारत के आदर्शों को अपना आराध्य बनाया था। वे आदर्श क्या थे, इसपर बहस नही करूगा। पर उस समय जिस प्रकार महात्मा गाधी हिन्दू-मुस्लिम एकता को भारत के स्वातन्त्र्य-सघर्ष की असली कडी मानते थे, वही मैं भी मानता था और मैं भी समझता था कि बहुभाषीय, बहुजातीय और बहुधर्मीय भारत का उद्धार इसी समन्वयात्मक सस्कृति के आधार पर हो सकता है।"

मैंने पूछा—"विभाजन से ऐन पूर्व के दिनो मे कलकत्ता और नोआखली मे मुस्लिम लीग के विषैले प्रचार से जो खून की होली खेली गई थी, उसके बावजूद ?"

"हा, उसके बावजूद। मेरी धारणा थी कि इतिहास मे कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब मनुष्य पर पागलपन सवार हो जाता है। वह इतना वहशी बन जाता है कि दरिन्दो को भी मात कर देता है। पर मनुष्य का यह रूप क्षणिक है। आखिर मनुष्य मनुष्य है, पशु नही है। आवेश के क्षणो मे उस-पर पशुता भले ही हावी हो जाए, पर तूफान गुजर जाने पर उसे फिर मनुष्य बनते भी देर नही लगती।"

थोडा रुककर बोले—"मुझे निश्चय था कि एक दिन ऐसा आएगा जब विभाजन से पैदा हुई कटुता समाप्त हो जाएगी। जब भारत और पाकिस्तान दोनो को बदरबाट करने वाली तीसरी शक्ति के चले जाने पर स्वय अपनी समस्याओ का समाधान करना पडेगा और राजनैतिक यथार्थ से वास्ता पडेगा, तब दोनो ही अपनी गलती पर पछताएगे। और तभी वह अवसर आएगा जब इस महादेश मे महात्मा गाधी द्वारा प्रचारित नया राष्ट्रवाद जन्म लेगा। मुझे लगा कि अपनी ईमानदारी और कर्त्तव्यपरायणता की बदौलत मैं उस सही राष्ट्रवाद की भावना को आगे बढाने मे सहायक हो सकता हू। मैं यह भी समझता था कि जब वह दिन आएगा तब मेरे जैसे सरकारी कर्मचारी की विनम्र सेवा का दोनो देशो मे सही मूल्याकन होगा।"

"पर क्या वह दिन आया?"

"नही, हरगिज नही। भारत मे गाधी की हत्या कर दी गई थी, फिर भी उसकी आत्मा अमर थी, इसलिए यहा के वातावरण मे उसका सदेश घूमता रहा। पर पाकिस्तान में तो गाधी कभी था ही नही।"

"यह आप कैसे कहते हैं? सीमान्त गाधी तो वहा मौजूद थे।"

"हा, थे। पर अन्त मे उन्हे यही तो कहना पडा न कि भारत ने विभाजन स्वीकार करके हमे भेडियो के मुह मे धकेल दिया।"

'क्या आपकी भी यही धारणा है?"

"हा, मेरा भी मोह-भग हो गया। इतने सालो तक पाकिस्तान मे सेवा करने के बाद मैंने भी यही महसूस किया कि भारत का विभाजन एक बहुत बडी गलती था। जब मैं पाकिस्तान का वित्त सचिव बनने के बाद सिन्ध मे जाकर रहने लगा, तब हर दिन और हर क्षण मुझे यह अहसास होता रहा कि मैं यहा एक अवाछित व्यक्ति हू। मुझपर भारत का जासूस होने का सदेह किया जाता रहा। महत्वपूर्ण निर्णय मुझसे छिपाए जाते रहे। यह सब तब जबकि मैं मन-वचन-कर्म से पूरी ईमानदारी से पाकिस्तान की सेवा कर रहा था और मेरे कार्य के विरुद्ध कभी किसीको अगुली उठाने का मौका नही मिला था।'

गहराई से सास लेकर बोले—"जब मरहूम लियाकत अली खा, जिनका पाकिस्तान के निर्माण मे कायदे आजम के बाद दूसरा नबर था और जो

ब्रिटिश कालीन राजनीति के मानदण्डों के हिसाब से बड़े योग्य और कुशल प्रशासक थे, पाकिस्तान के प्रधान मंत्री बने, तब एक दिन सचिवालय के सभी विभागों के सचिवों की बैठक बुलाकर उन्होंने सबको सम्बोधित किया। उन्होंने अपनी कार्य-प्रणाली समझाई तथा पाकिस्तान सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली नीति के परिपालन में सबके सहयोग की कामना की।

बैठक की समाप्ति पर उन्होंने कहा—"पाकिस्तान के प्रशासनिक विभाग में जितने भी हिन्दू उच्च पदाधिकारी हैं, मैं उन सबसे अलग, एकान्त में, व्यक्तिशः मिलना चाहता हूं।"

जब मेरी बारी आई तो मैं भी उनके कमरे में गया। लियाकत अली खां ने छूटते ही सबसे पहला प्रश्न मुझसे यही किया—"तुमने सर्विस के लिए पाकिस्तान को क्यों चुना?" मैंने कहा—"सर! सर्विस तो सर्विस है फिर जो काम मैं सालों से करता आ रहा था, उसको करते रहने में ही अधिक सुविधा थी।"

इसके बाद लियाकत अली खां ने मेरी आंखों में आंखें डालते हुए एकदम नोकीला तीर छोड़ा—"क्या तुमने कभी अखण्ड भारत का स्वप्न नहीं लिया? क्या तुम समझते हो कि तुम ईमानदारी से पाकिस्तान की सेवा कर सकते हो? कहीं तुम हमें, या कहूं अपने-आपको, किसी धोखे में तो नहीं रख रहे हो?"

प्रश्न चुभता हुआ था और मेरे सारे कैरियर को प्रभावित करने वाला था। अनेक संभावनाएं इसके साथ नत्थी थीं। ज़रा-सा भी इधर-उधर होने से मैं संकट में पड़ सकता था। मैं तिलमिला गया। मैंने कहा—"सर! असलियत यह है कि अब भी जब मैं रात को सोता हूं तो मुझे अखण्ड भारत के स्वप्न आते हैं। आखिर सालों से जिस चीज़ को मन में हम पालते रहे और जिसकी सिद्धि के लिए यथासंभव प्रयत्न भी करते रहे, वह सब मन से एकदम धुल-पुंछ जाए और उसकी याद तक नहीं आए, यह संभव नहीं है। पर जब मैं सोकर उठता हूं, तब मैं अपने-आपको पाकिस्तान में पाता हूं और तब मैं पाकिस्तान के प्रति निष्ठा को अपने कर्त्तव्य पालन का आवश्यक अंग मानता हूं और उसके लिए कमर कसकर तैयार हो जाता हूं। सर! मेरे साथ ठीक यही बात है।"

आई स्लैप्ट एंड ड्रीम्ट दैट लाइफ वाज ब्यूटी,
वट आई वोक एंड फाउंड दैट लाइफ वाज ड्यूटी।

"'और जिस दिन अपने कर्त्तव्यपालन मे मुझे तनिक भी कोताही नजर आएगी, उसी दिन मैं सर्विस छोड़कर चला जाऊगा, बिना इस बात की परवाह किए कि मेरा या मेरे बाल-बच्चो का क्या होता है।"

और तब कायदे-मिल्लत लियाकत अली खा ने सब औपचारिकता भूलकर मेरी पीठ ठोकी और कहा—"मैं तुम्हारी साफगोई से बहुत प्रसन्न हू। जाओ, अपना काम करो।"

मैं स्तम्भित-सा यह सब सुनता रहा। फिर पूछा—"तो फिर आप पाकिस्तान मे रहे क्यो नही?"

"यह मुझसे न पूछकर पाकिस्तान सरकार से पूछो। मैंने अपनी ओर से कभी ऐसा कोई काम नही किया जो पाकिस्तान के अहित मे हो, न ही मैंने कभी कोई पक्षपात या भेदभाव किया। पर मेरा हिन्दू होना ही सबसे बड़ा अपराध था। मुझपर लगातार शक किया जाता रहा। मेरे पीछे सदा गुप्तचर लगे रहे। मेरी पत्नी और मेरे बच्चो को परेशान किया जाता रहा और पत्रकार महोदय! अब आपको क्या बताऊ! पीछे तो ऐसी स्थिति आ गई कि मेरी पत्नी अपनी कमर मे पिस्तौल खोसे मर्दाने वेष में रोज रात को कोठी के मेन गेट पर पहरा दिया करती।"

मैंने पिछले अध्याय मे एक जीवट वाले व्यक्ति का जिक्र किया है। इस प्रकार के जीवट वाले व्यक्तियो का बगला देश मे अभाव नहीं है। पर मैंने तो खिचड़ी का केवल एक दाना ही नमूने के लिए पेश किया है। गिनती गिनाने बैठू तो सूची लम्बी हो जाएगी।

विभाजन के परिणामस्वरूप भारत को आजादी मिली, यह सत्य है पर इससे कितनी बड़ी विसगति पैदा हो गई—क्या कभी किसीने इसपर भी ध्यान दिया है?

"मेरी लाश पर ही देश का विभाजन होगा"—इस मत्र का उद्घोषक अपने सिपहसालारो के सामने झुक गया और सिपहसालार मौके पर मूछें

नीची करके सत्ता की कुर्सियो पर जम गए। पर इस महादेश के पूर्व और पश्चिमी भाग मे वे हजारो और लाखो काग्रेसी क्या हुए जिन्होने इस मत्र से प्रेरणा लेकर अपना सर्वस्व देश की आजादी के लिए होम देने का सकल्प किया था। इसकी चिन्ता कब और किसने की है ? वे स्वातन्त्र्य प्रेमी लोग देश के दोनो भागो मे भेडियो के जबडो मे ही तो झोक दिए गए।

एक ही कार्य के लिए ये अलग-अलग पुरस्कार किसलिए ? भारत मे वे मत्री बने, विधायक बने, या अफसर बने, और अगर इनमे से कुछ नही बन पाए तो स्वातन्त्र्य-सेनानी की पेंशन तो पा गए। इस प्रकार वे तो अपने पूर्वकृत पुण्यो का चेक भुनाकर स्वर्ग-सुख का आनन्द लेने लगे पर उन्हीके साथी, समानधर्मी और समान कर्मा, बगला देश और सीमाप्रान्त के स्वातन्त्र्य योद्धाओ के लिए आज भी जेल, लाठी, गोली, दमन, अत्याचार और नरक के सिवाय और क्या है ?

जब अल्पसख्यको के भविष्य की चर्चा करने लगा हू, तो यह स्पष्ट देखता हू कि वे जैसे पाकिस्तान मे अवाछित थे, वैसे ही अब बगला देश मे भी अवाछित हैं। देश की आज़ादी के लिए अतीत मे जिन्होने कष्ट उठाया था भारत मे भले ही वह कष्ट 'क्वालिफिकेशन' गिनी जाती हो, पर पाकिस्तान या बगला देश मे तो वह 'डिसक्वालिफिकेशन ही है। बगला देश मे वे मान सिक रूप से तो स्थानभ्रष्ट है ही, उन्हे शारीरिक रूप से भी स्थानभ्रष्ट करने की योजनाए फिज़ाओ मे गूजती है।

मैंने एक दिन रेल मे चायबगान के एक मैनेजर से पूछा था—"बगला देश मे जो इतनी महगाई, अराजकता और मुसीबत है, उस सबका कारण क्या है ?"

उसने कहा—"बगला देश बन जाने के बाद जब से एक करोड लोग भारत से यहा आ गए हैं, तभी से यह मुसीबत है।"

ये एक करोड लोग कौन हैं—मैं इस बहस म क्या पडता ! परन्तु उससे यह मनोवृत्ति स्पष्ट हो गई कि याह्‌या खा के फौजी दरिन्दो ने जिन एक करोड लोगो को शरणार्थियो के रूप मे भारत मे जाने के लिए बाधित किया था, वे एक करोड लोग यदि भारत के सिर पडे रहते तो बगला देश के ये लोग खुश होते।

क्यो नही, जिन लोगो ने सुनील वसु की जमीन-जायदाद पर गैरकानूनी ढग से कब्जा कर लिया है, उनकी दृष्टि मे तो सारी मुसीबत की जड सुनील वसु का जेल से जिन्दा लौट आना ही है। यदि दादा को वापस जेल मे डाल दिया जाए, या वे स्वय अपनी मौत मर जाए, तो इनकी सारी मुसीबतें समाप्त हो सकती है।

बगला देश की मुक्ति के पश्चात् अपनी मातृभूमि मे वापस लौटे एक अन्य व्यक्ति ने मुझे बताया—"देहात में मेरी दो लाख रुपये की जायदाद है जिसपर गैरो ने गैरकानूनी ढग से कब्जा कर रखा है। जब मैंने पुलिस को रिपोर्ट की, तो थानेदार ने कहा—'वह जायदाद तो जिसके पास है, उसीके पास रहेगी, तुम्हे नही दी जा सकती। पर हां, हम इतना कर सकते हैं कि जायदाद के इस वर्तमान मालिक से तुमको पाच हजार रुपये दिलवा दें। तुम्हें मजूर हो, तो बोलो। पर इसके लिए भी शर्त है कि तुम पहले अपनी ओर से पाच हजार रुपये देकर हमारी मुट्ठी गर्म करो।"

क्या इसीका नाम न्याय है ?

पर यही न्याय है जो इस समय बगला देश मे बरता जा रहा है। भारत से लौटकर बगला देश मे जाने वाले अधिकाश शरणार्थियो को इसी प्रकार के न्याय का शिकार होना पड रहा है। पहले पाकिस्तानी शासको की क्रूरताओ से परेशान होकर वे शरणार्थी बनकर भारत आए थे। उनमे से बहुतो ने मुक्तिवाहिनी के साथ कधे से कन्धा भिडाकर बगला देश की आज़ादी के लिए बलिदान दिया था। बगला देश की मुक्ति के पश्चात् उन्होने सुख की सास ली थी। अपनी मातृभूमि की समृद्धि के लिए उनके मन मे न जाने कितने सकल्प और कितनी योजनाए थी। कितनी आशाए लेकर वे 'सोनार बागला' लौटे थे। पर 'सोनार बागला' ने उनके हाथ मे भिक्षापात्र पकडा दिया। अब उनके पास दर-दर का भिखारी बनने के सिवाय और क्या उपाय रह गया ?

बगला देश मे भिखारियो की इतनी भरमार क्यो हो गई—इसका यह एक और नया पहलू है ?

आखिर बगला देश के अल्पसख्यको की समस्या का समाधान क्या है—

इस सम्बन्ध मे मेरी अनेक प्रकार के लोगो से बातचीत हुई।

अनेक वर्षों से मौलाना अब्दुल हमीद खा भाशानी एक समाधान सुनाते रहे है। वह समाधान यह है कि पूर्वी बगाल (अब बगला देश), पश्चिम बगाल, मणिपुर-त्रिपुरा, सिक्किम, भूटान और आसाम को मिलाकर सयुक्त बगाल के नाम से एक अलग राज्य बनाया जाए। इस राज्य का क्षेत्रफल होगा, १,७०,००० वर्गमील और जनसख्या होगी दस करोड। इस राज्य की ६० प्रतिशत आबादी बगलाभाषी होगी और यह अपने-आपमें एक सुगठित, सम्पन्न, आत्मनिर्भर और सब तरह से समर्थ राज्य होगा।

पर मौलाना भाशानी के इस राजनैतिक महत्त्वाकाक्षी स्वप्न की सबसे कमजोर कडी यह है कि मणिपुर, सिक्किम, भूटान, आसाम और पश्चिमी बगाल की जनता तो इसकी समर्थक है ही नही, स्वय बगला देश में भी मौलाना साहब अपने अधिक समर्थक नही जुटा पाए। बगला देश की मुक्ति के बाद, मौलाना के अपने देश मे जो उनके थोडे-बहुत समर्थक थे, वे भी टूट गए।

मुक्ति-सग्राम के दिनो मे मौलाना भाशानी अपनी बीमारी का इलाज कराने दिल्ली आए थे। यहा मेडिकल इस्टीट्यूट मे उनका इलाज हुआ था और भारत के आतिथ्य के प्रति उन्होने आभार भी प्रकट किया था। पर यहां से जाने के बाद उनकी नसो मे फिर भारत-विरोधी खून हिलोरें लेने लगा।

मौलाना ने अपने कम्युनिज्म-प्रेम के झोक मे उन दिनो माओत्से तुग की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजा था, जिसमें लिखा था—"च्यागकाई शेक के शासन के समय चीन मे, जार के शासन के समय रूस मे, और ब्रिटिश शासन के समय भारत मे भी ऐसे जुल्म नही हुए। मैं अब ८६ साल का हो गया हू। इस उम्र मे पाक सैनिको ने मेरा घर नष्ट कर दिया है और मेरा पुस्तकालय जला दिया है। मेरे परिवार का भी पता नही क्या हुआ?......"

पर पाक-परस्त माओ के कान पर जू नही रेंगी। मौलाना साहब की उक्त योजना में भी, सभव है, चीन की ही कुछ प्रेरणा हो। पर नदी तट के कगार पर खडे, कब्र मे पाव लटकाए, अब ६३ वर्ष के उस वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ को आज अपने ही देश मे कालातीत वस्तुओं में गिना जाने लगा है।

मैं भाशानी साहब की योजना से परिचित था। पर खुशी है कि जिस-जिससे भी मैंने बात की, उनमें से किसीने भी अल्पसख्यको की समस्या के समाधान के लिए इस योजना का उल्लेख नही किया।

मुझे एक पुराने फारवर्ड ब्लाकिस्ट नेता मिले, जो आज भी सुभाष बोस के उसी प्रकार भक्त हैं जिस प्रकार आजाद हिन्द फौज के आन्दोलन के दिनो मे थे। उन्हे अब भी विश्वास है कि सुभाष बोस जीवित हैं और वे एक दिन प्रकट होगे। जन्मना मुसलमान हैं और बगला देश की अन्धमूक सोसायटी के अध्यक्ष हैं और इसी नाते अपने देश का प्रतिनिधित्व करके अनेक देशो की यात्रा कर चुके हैं।

वे बोले—"मैं भारत के विभाजन मे जिन्ना का दोष नही मानता, भारतीय नेताओ का दोष मानता हू। भारतीय नेताओ से भूल १९४६-४७ मे नही हुई, १९२०-२१ मे हुई—जब कोकिनाडा मे हुए काग्रेस के महाधिवेशन मे देशबन्धु चितरजनदास ने देश के अल्पसख्यको (मुसलमानो) को रियायतें देने का प्रस्ताव रखा था और अन्य भारतीय नेताओ ने उसे अस्वीकार कर दिया था। उसके बाद दुबारा यह भूल १९३७ मे हुई जब देश के अनेक राज्यो मे काग्रेस ने सत्ता संभाली, किन्तु उसमे मुस्लिम अल्पसख्यको को उचित प्रतिनिधित्व देने से काग्रेस ने इन्कार कर दिया। सन् १९४६ मे जिस तरह अन्तरिम सरकार मे मुसलमानो को शामिल किया गया था, यदि उसी तरह सन् ३७ मे कर लिया जाता तो यह नौबत न आती।"

मैंने कहा—"यह तो आप दूर की बात करने लगे।"

तो बोले—"पास की बात करने के लिए ही दूर की बात खीचकर लाया हू। इस समय बगला देश की जो दुरवस्था है उसके लिए भी मैं भारतीय नेताओ को ही दोष देता हू।"

मैं चौंका—"सो कैसे ?"

उन सज्जन ने कहा—"हमारे मुक्ति प्रयासो मे सहायता करके भारत ने हमे मुक्त करा दिया, इसके लिए हम उसके आभारी हैं। पाकिस्तान के अत्याचारो से हम पीडित थे, इसीलिए पाकिस्तान के टूटने पर हमे कोई रज नही हुआ। पर हमें रज इस बात का है कि पाकिस्तान को तोडने के बाद, अपनी शक्ति, आदर्शवादिता और विजय की दुन्दुभि बजाते हुए भारतीय नेता

हमे अनाथ छोड गए।"

मैंने कहा—"अनाथ कहा छोड गए। आपका घर आपको सौप दिया। आप खुद बालिग हैं। अब अपना घर सभालिए।"

"आप मेरी बात का मर्म नही समझे। हमे अफसोस है तो इसी बात का है कि जब सब कुछ भारत के हाथ मे था तो वह बंगला देश का शासन भ्रष्ट लोगो के हाथ मे क्यो सौप गया।"

"बंगबन्धु के शासन को आप क्या कहेंगे ?"

"हा, हा, मैं उसीको तो कह रहा हूं। बंगबन्धु को नही, उनके शासन को। ऊपर से नीचे तक सर्वत्र भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार। बंगबन्धु के प्रति हमारे हृदयो मे प्रेम है, हम उनका आदर करते है। उनके त्याग और बलिदान के प्रति हमारे मस्तक श्रद्धा से नत है। पर वे सुवक्ता हैं, सुप्रशासक नही।"

"तो आपकी दृष्टि मे भारत को क्या करना चाहिए था ?"

"भ्रष्ट लोगो के हाथ मे सत्ता सौंपने के बजाय अच्छा होता कि भारत बंगला देश का शासन खुद सभाल लेता।"

मैं उस मुसलमान सज्जन के मुह की ओर ताकने लगा। यदि किसी हिन्दू ने यह बात कही होती तो शायद उसका कुछ और अर्थ लगाया जाता। मेरे लिए यह एक सर्वथा नया दृष्टिकोण था।

मैंने असमजस की सी स्थिति मे बात को कवित्वपूर्ण रंग देने के लिए कहा—"यदि कोई युवक नदी मे डूबती हुई किसी युवती को अपनी जान पर खेलकर बचा ले और फिर उसे अपने घर मे डाल ले, तो उस युवक को आप क्या कहेंगे ?"

वे सज्जन हंस पडे। कुछ देर तक हसते रहे।

फिर वार्तालाप को उसी गंभीरता के घेरे मे लाते हुए बोले—"मैं किसी सामयिक आवेश के वशीभूत होकर या भावुकतावश यह बात नही कह रहा हूं। न ही इसीलिए कि आप भारतवासी है। पर इस तरह की बात सोचनेवाला मैं अकेला व्यक्ति नही हूं। बल्कि मेरी तरह और अनेक लोग हैं, जो यही सोचते हैं।"

"पर उसके कुछ अन्तर्राष्ट्रीय फलितार्थ भी तो होते। इसके अलावा

पाकिस्तान तो यह कहता ही कि भारत ने अपनी विस्तारवादी और साम्राज्य-वादी मनोवृत्ति का परिचय देकर बगला देश को हडप लिया। अमरीका और पाकिस्तान-समर्थक अन्य देश यह आरोप लगाने से बाज नही आते कि भारत का वश चलता तो वह पश्चिमी पाकिस्तान को भी नष्ट करके ही छोडता। फिर मैं आपसे पूछता हू कि बगला देश की मुस्लिम बहुल जनता क्या हिन्दू-बहुल भारत का, भले ही वह सम्प्रदाय निरपेक्षता का जी जान से पालन करनेवाला हो, शासन स्वीकार कर लेती ?"

उन सज्जन ने पूरी गभीरता से कहा—'भारत के शासन का अर्थ यह तो होता नही कि ढाका को उठाकर भारत दिल्ली ले जाता। जैसे भारत के अन्य राज्यो म धर्मनिरपेक्ष लोकतत्रीय पद्धति से वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव होते हैं, वैसे ही चुनाव यहा पर भी होते और उन चुनावो मे हमी लोग तो—मेरा अभिप्राय बगला देश के निवासियो से है—चुनकर आते। हमी लोग विधायक, ससद् सदस्य और मत्री बनते और यहा का शासन हमी सभालते। तब इतना अवश्य होता कि यदि बगला देश मे अकाल या बाढ की विभीषिका उत्पन्न होती तो सारा भारत और उसके ६० करोड निवासी हमारी सहायता करते और घाटे की स्थिति होने पर जैसे केन्द्र अन्य राज्यो की क्षतिपूर्ति करता है, वैसे ही हमारी भी करता।"

किंचित् विराम के साथ उन्होंने कहा—"मैं इस बात के लिए भारतीय नेताओ की दूरदर्शिता की प्रशसा करता हू कि उन्होंने मेघालय, अरुणाचल और मिजोरम के नाम से हाल मे कुछ नये राज्यो की घोषणा की है। यह उदारता भारत सरकार ही कर सकती है। पाकिस्तान तो इस प्रकार की बात सोच भी नही सकता। ये राज्य भले ही छोटे हो, किन्तु इनका पृथक् अस्तित्व स्वीकार कर लेने से उन राज्यो की जनता की राजनीतिक आकाक्षाए पूरी होने का तो अवसर मिलता है।'' मैं खुद आपसे पूछता हू कि यदि मेघालय और अरुणाचल की तरह बगला देश भी पृथक् राज्य के रूप मे भारत का अग रहे तो हमे नुकसान क्या है ? उल्टे हमे लाभ ही लाभ है। तब हमारे राज्य मे भारत से दस गुनी महगाई और बीस गुनी अराजकता तो न होती।"

मैं इस विश्लेषण से हैरान होता और बात को समाप्त करने की गरज

से कहता हू—"जिनको यह बात सोचनी चाहिए, वे पता नही इस ढग से सोचते है या नही। मैं या आप इस विषय मे फैसला करने वाल नही है।"

मैं ढाका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मोजाहरुद्दीन अहमद से मिला, जिन्होंन इतिहास और कानून की लगभग तीस पुस्तकें लिखी हैं। अल्पसख्यका के सबध मे उनसे भी बात चल पडी तो कहने लगे—"आप अल्पसख्यकों की बात करते है, मैं बहुसख्यको की और पूरे बगला देश की बात करता हू। देखिए, मैं जन्म से मुसलमान हू और इस्लाम मे मेरी पूरी आस्था है। पर जब मैं शिक्षक के अकेडेमिक दृष्टिकोण से सोचता हू तब मुझे लगता है कि देशो और जातियो के निर्माण मे धर्म से भी अधिक भूगोल सहायक होता है। मुसलमान होने पर भी अरब देशो से मेरा कोई भौगोलिक सबध नही है। मेरा मक्का-मदीना और मेरा काबा बेशक वहा है, पर मेरा खानपान उनसे नही मिलता, मेरी भाषा उनसे नही मिलती, मेरा वेश उनसे नही मिलता, मेरा रहन-सहन उनसे नही मिलता, मेरा इतिहास, मेरी परम्परा, मेरा साहित्य—कुछ भी तो उनसे नही मिलता। मेरे लिए मक्का और मदीना का भी वही महत्त्व है जो किसी विदेशी बौद्ध के लिए बोधगया, लुम्बिनी वन और कुशीनगर का है। इसलिए मैं समझता हू भारत से सर्वथा कटकर रहना बगला देश के लिए सभव नही है—यह उसका अपने भूगोल और इतिहास के साथ ही अन्याय है। हा, हम मुसलमान है, इसीलिए थोडा-बहुत पाकिस्तान के मुसलमानो के प्रति भी मोह है। पर जितना मोह पाकिस्तान के मुसलमानो के प्रति है, उससे ज्यादा मोह तो भारत के मुसलमानो के प्रति है। वही भूगोल, इतिहास और परम्परा वाली बात। पर पाकिस्तान का तानाशाही रुख हमें पसन्द नही। उससे हम अघा चुके है। यह लोकतन्त्र का, धर्मनिरपक्षता का और समाजवाद का युग है। मैं तो चाहता हू कि बगला देश, पाकिस्तान और भारत—इन तीनों का एक महासघ बन जाए। तीनो लोकतत्र, धर्म-निरपेक्षता और समाजवाद को अपना राजनैतिक आदर्श घोषित करें। मुझे इसीमे बगला देश का भविष्य सुरक्षित लगता है। हम तीनो आपस मे लड-कर जीवित नही रह सकते। पर बन्धुता और सौहार्द की भावना से हम

चिरजीवी हो सकते हैं।"

मैंने कहा—"प्रोफेसर ! तुमने तो पूरा लेक्चर ही झाड दिया।"

प्रोफेसर बोले—"क्या करू, आदत से लाचार जो हू।'

एक पुराने क्रान्तिकारी से मैंने यही प्रश्न किया—"बगला देश के अल्पसख्यको की समस्या के समाधान के लिए आप क्या सोचते है ?"

वे बोले—"अब क्या सोचगे, हम तो सोच चुके जो कुछ सोचना था। हमने अपनी जवानी के दिनो मे जिस स्वतन्त्र अखण्ड भारत की कल्पना की थी वह सब धूलि-धूसरित हो गई। हमारे सब स्वप्न मिट्टी मे मिल गए। शरणार्थी बनकर हम सब पुन भारत म पहुच जाए, यह मेरी आत्मा गवारा नही करती, न ही मेरी बुद्धि इसका औचित्य स्वीकार करती है।"

मैंने पूछा—"क्यो ?"

'क्योकि इसस हमारे आत्मसम्मान को चोट लगती है। इसके अतिरिक्त भारत के सिर पर इन एक करोड लोगो का अतिरिक्त भार डाल देना, उनकी रोजी-रोटी की समस्या का सिरदर्द पैदा कर देना, भारत की भी कमर तोड सकता है, क्योकि स्वयं भारत मे आबादी की दृष्टि से प्रतिवर्ष एक आस्ट्रेलिया तैयार हो जाता है—अर्थात् वहा प्रतिवर्ष पचास लाख नये मुह तैयार हो जाते हैं जिनके भोजनाच्छादन की व्यवस्था तो भारत को हर हालत मे करनी ही पडती है। इसके अलावा सब हिन्दुओ का बगला देश से चला जाना बगला देश के भी हित मे नही है।"

'वह कैसे ?'—मैंने पूछा।

तो बोले—'सब हिदुओ के चले जाने पर बगला देश मे सम्प्रदाय-निरपेक्षता और लोकतन्त्र की सभावना भी समाप्त हो जाएगी। तब यह पूरी तरह इस्लामिक राज्य बन जाएगा और यहा वैसा ही धर्मान्ध मध्ययुगीन सामन्तकालीन वातावरण बन जाएगा जैसा कि अरब देशो मे है। यहा मुगल-कालीन हरम-राजनीति चल पडेगी और यह देश ससार मे प्रगति की दौड मे पिछड जाएगा।'

'फिर आप कुछ समाधान तो सोचते होगे ?"—मैंने पूछा।

उन्होने कहा—'क्यो नही। जिस तरह भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेशो मे रहने वाले नागरिको को ब्रिटिश पारपत्र सुलभ होता है और उन्ह ब्रिटेन मे

बसने की सुविधा रहती है, उसी प्रकार 'भूतपूर्व भारत' के हम निवासियो को भी सुविधा मिलनी चाहिए और हमारी सुरक्षा की गारटी भारत सरकार को भी देनी चाहिए, क्योकि देश के विभाजन के समय दोना ओर के अल्पसख्यको की सुरक्षा को सयुक्त जिम्मेवारी का विषय समझा गया था।"

मैंने पूछा—"यदि बगला देश अपने यहा के अल्पसख्यको के जानमाल की रक्षा करने मे असमर्थ सिद्ध हो, तब क्या होगा ?"

उन्होने कहा—' तब भारत सरकार को स्पष्ट रूप से यह घोषणा करनी चाहिए कि अल्पसख्यको की सुरक्षा सयुक्त जिम्मेवारी का विषय थी, और भले ही बगला देश अपने कर्तव्यपालन मे असमर्थ रहा, पर हम अपने कर्तव्य पालन से पीछे नही हटेंगे। इसके लिए उसे बगला देश से एक करोड अल्प सख्यको के पुनर्वास के लिए भूमि मागनी चाहिए और अपनी निगरानी मे बगला देश के सीमान्त पर उन सब अल्पसख्यका को बसाने की व्यवस्था करनी चाहिए।'

"आपके चिन्तन मे खामखयाली ज्यादा है। क्या आप समझते हैं कि इस तरह बगला देश आसानी से भूमि देने को तैयार हो जाएगा ?"

तब वे क्रान्तिकारी अत्यन्त सहज भाव से बोले—"दुनिया मे आसानी से कही कुछ भी नही होता। मैं जानता हू कि बिना अगुली टेढी किए घी भी नही निकलता। पर मुझे विश्वास है कि जिस बाण से राम ने बालि को मारा था, राम के तरकस मे वह बाण अब भी खत्म नही हुआ है।'

इसके आगे बातचीत की गुजाइश नही थी।

एक दिन मैं यही सवाल चारु दा से पूछ बैठा। वही चारु दा, जो नोआ-खाली म गाधी जी के साथ गए थे। वे उस समय गाधी जी के पथप्रदर्शक भी थे, उनके दुभाषिये भी थे, उनको बगला भाषा सिखाने वाले गुरु भी थे, उनके पत्र-लेखक भी थे, उनके सहयोगी भी थे और उनके सेवक भी थे। ७३ वर्षीय चारु दा से मैंने पूछा—"दादा ! बगला देश के अल्पसख्यको के भविष्य के बारे मे आप क्या सोचते हैं ?"

चारु दा मेरे कधे पर स्नेह से हाथ रखते हुए बोले—"मेरे पत्रकार

बन्धु ! मैंने दुनिया के बहुत उलट-फेर देखे हैं। विभाजन से पूर्व के स्वातन्त्र्य-संघर्ष के दिनों की मस्ती और सरफरोशी की तमन्ना मुझे याद है। मुझे याद हैं विभाजन से ऐन पहले के नोआखाली के हत्याकाण्ड की रक्तरंजित रोमांचकारी घटनाएं। फिर विभाजन के बाद की उदासी-भरी, ज्वार के बाद पानी को विपरीत दिशा में ले जाने वाली भाटे की सी भयप्रद वारदातें भी मुझे याद हैं। और आज बंगला देश का नंगापन भी अपनी आंखों से देख रहा हूं। अभी इन आंखों से और क्या-क्या देखना बाकी है, भगवान जाने !"

मैं देख रहा था कि झुर्रियों से और पलकों तथा भौंहों के सफेद बालों से ढकी उन बूढ़ी आंखों की कोरों में नमी झलक आई थी और चारु दा कह रहे थे—"नोआखाली के गांधी आश्रम की बुरी हालत है। वहां के सर्वोदय कार्यकर्ता और खादी कार्यकर्ता आतंक की स्थिति में जी रहे हैं। आश्रम की भूमि में जो फसल खड़ी थी उसे बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लोग काटकर ले गए हैं। पुलिस में रिपोर्ट करते हैं तो कोई सुनने वाला नहीं। आर्थिक तंगी इतनी अधिक है कि सब कार्यकर्ता आश्रम छोड़कर जाना चाहते हैं। क्या तुम दिल्ली जाकर गांधी जी के प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल जी से आश्रम की हालत बताकर कुछ सहायता भिजवा सकते हो ! उनको चिट्ठी लिखते हैं, तो कोई जवाब नहीं आता। यदि नोआखाली का आश्रम बन्द हो गया तो बंगला देश में गांधी जी का अन्तिम स्मारक भी नामशेष हो जाएगा।"

"दादा ! दिल्ली जाऊंगा तो प्यारेलाल जी से अवश्य मिलूंगा और नोआखाली के आश्रम के बारे में उन्हें सही स्थिति से अवगत कराऊंगा।" कहने को मैं यह कह तो गया, पर मैं समझ रहा था कि बंगला देश में इस समय जैसे हालात चल रहे हैं, उन्हें देखते हुए प्यारेलाल जी भी अधिक दिनों तक नोआखाली के आश्रम को बचा नहीं सकेंगे। शायद चारु दा भी मन में यही अनुभव करते थे, पर फिर भी एक झूठी आशा के धागे के झूले पर झूल रहे थे।

क्या कहा, धागे का झूला ? सो भी झूठी आशा के धागे का !

हां, रस्सी का नहीं, धागे का ही झूला।

मनुष्य के मन की वह कैसी निराशा-भरी स्थिति होती है जब वह धागे के झूले को भी सत्य और अटूट मान बैठता है।

मैंने कहा—"दादा, आप अल्पसख्यको की बात कह रहे थे।"

चारु दा बोले—"महाभारत के मुसल पर्व की कथा याद है? भैया! बगला देश मे इस समय मुसल पर्व चल रहा है—मुसल पर्व। नवजात शिशु का मुख देखने के सुख की इच्छा मे ही जननी प्रसव-पीड़ा बर्दाश्त कर लेती है, पर इससे प्रसव-पीडा की भयकरता कम नही होती। हमने भी नवजात बगला देश के शिशु का मुख देखने का सुख पाया है, पर हमारी प्रसव-पीडा को और कोई क्या जानेगा?...जहा तक यहा के अल्पसख्यको के भविष्य का प्रश्न है, मैं सर्वथा निराश हू। मुझे कोई भविष्य नजर नहीं आता। मैंने कहा न, यह मुसल पर्व है। यह मुसल एक-एक करके हरेक की गर्दन पर गिरेगा। सब धराशायी हो जाएगे। कोई नही बचेगा। मैं भी नही। विनाश...विनाश...विनाश...विनाश के सिवाय और कुछ नही। मुझे सामने की दीवार पर यही एक शब्द लिखा दिखाई देता है।"

८

अरविन्द की याद में

दफ्तरो मे काम करने वाले कर्मचारी जब छुट्टी करके घर जाने की जल्दी मे होते हैं, तो दिन-भर दाना-दुनका चुगने मे व्यस्त उन पछियों की याद आए बिना नही रहती जो सूर्यास्त का समय निकट जानकर वापस अपने घोसलों की ओर उड पडते हैं। मैं मन ही मन कविवर बच्चन की ये पक्तिया गुनगुनाता जा रहा था

बच्चे प्रत्याशा मे होगे,
नीडो से झाक रहे होगे—
यह ध्यान परो मे चिडियो के
भरता कितनी चचलता है।

जब सूर्य सन्यासियो के चीर-चीवर जैसी गैरिक आभा से मण्डित होकर पश्चिम-समुद्र में डुबकी लगाने की तैयारी करता है और गौए अपने गले मे बधी घटियो को बजाती हुई चरागाह से लौटती है, तब गोधूलि बेला मन मे सहज ही वैराग्य, आध्यात्मिकता और कवित्व के अद्भुत भाव की सृष्टि करती है।

ढाका का मेन बाजार गुजर गया, जहा 'गुलिस्तान' सिनेमा है। पल्टन बाजार भी गुजर गया। दफ्तरों से लौटने वाली भीड सूर्यास्त से पहले ही अपने घोसलो मे पहुच जाना चाहती है, इसलिए जल्दी मे है। दिन मे भी मुझे बाजारो मे विशेष चहल-पहल और भीड-भाड नजर नही आई थी। सूर्यास्त होते न होते तो लगभग सुनसान-सा होने लगता है।

ढाका रिक्शाओ का शहर है। जिधर देखो, उधर रिक्शा। रिक्शा ही रिक्शा। सार्वजनिक बसें भी चलती है, पर उनकी बहुलता दृष्टिगोचर नही हुई। तीन पहियो वाले स्कूटर भी अब वहा पहुच गए है, पर उनकी सख्या

बहुत थोडी है ।

मैं एक रिक्शा से जा रहा हू ।

सूर्यास्त के बाद अन्धकार एमदम झपट्टा-सा मारता है। सडको पर लगी रोशनी मन्द है । इसलिए इस झपट्टे का अहसास हुए बिना नही रहता ।

जिस जगह पहुचता हू, वह एक पुरानी इमारत है ।

कमरे मे २५-३० व्यक्ति बैठे हैं। अधिकाश प्रौढ, किन्तु कुछ नवयुवक भी।

शायद कमरे की बिजली गई हुई है, इसलिए एक ओर दो बडी मोम बत्तिया जल रही हैं। सामने योगिराज अरविन्द का एक चित्र रखा है। उसके आगे अगरबत्ती और धूप। एक सज्जन बगला मे अपने विचार प्रकट कर रहे हैं और शेष सब लोग ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं।

कंडल लाइट से वैसे भी वातावरण म कुछ रोमाचकता और रहस्यात्मकता आ जाती है।

मैं चुपचाप एक ओर बैठ जाता हू।

बगला भाषा न जानते हुए भी इतना तो जान ही जाता हू कि अरविन्द घोष की फिलासिफी के बारे मे चर्चा चल रही है। जब और कुछ ध्यान से सुनता हू तो व्यक्त किए जा रहे विचार-सूत्र को भी पकड पाता हू। अरविन्द के विचारो से सर्वथा अपरिचित नही हू। इसी कारण विचार-सूत्र को पकडने मे ज्यादा उलझन नही होती। फिर भी पूरी तरह पकड नही पाता। एकाध सज्जन और भी बोलते है। उनके विचारो को पकडने मे भी कुछ सफल और कुछ असफल होता हू।

अन्तिम एक सज्जन अग्रेजी मे बोलते है। तब विचारसूत्र पकडने मे कठिनाई नही होती।

वे शुरू मे ही एक प्रश्न उपस्थित करते हैं—"योगिराज अरविन्द ने जगन्माता, आदिशक्ति, महामाया, महादुर्गा आदि शब्दो से जिस तत्त्व का सम्बोधन किया है, वह तत्त्व क्या है ?"

विवेचन गम्भीर है। वक्ता महोदय कह रहे है—"पाश्चात्य लोगो का तरीका यह है कि वे 'मिसेज' के नाम से व्यक्ति का परिचय देते है, जबकि हमारी प्राचीन परम्परा यह है कि पुत्र के नाम से माता का और माता के नाम से पुत्र का परिचय दिया जाता है। हमारे यहा पितृभूमि कहने का रिवाज

नही है, मातृभूमि कहने का रिवाज है। मातृभूमि भी केवल मिट्टी और पत्थर का नाम नही है। जो बुद्धिवादी अचेतन जड भूखण्ड मे मातृभावना का मखौल उडाते हैं, वे वास्तव मे बुद्धि का ही मखौल उडाते है। जहा तक केवल बुद्धिवादी तर्क का प्रश्न है—माता का शरीर भी उन्ही पच तत्त्वो से बना है जिनसे अन्य स्त्रियो का। फिर मा अन्य स्त्रियों से भिन्न क्यो है ? मा के प्रति भक्ति भाव क्यो उमडता है? बुद्धिवादी के पास इसका क्या उत्तर है ?"

वक्ता महोदय की युक्ति-प्रणाली आकर्षक थी। मन बधता चला गया।

"मनुष्य के शरीर के लिए स्टार्च, प्रोटीन, और चिकनाई की जरूरत होती है। मनुष्य के मास म ये सब तत्त्व प्रचुर मात्रा मे विद्यमान हैं। प्राणि-शास्त्र की दृष्टि से भी मनुष्य रक्त, मास, अस्थि और मज्जा के सिवाय और क्या है ? तो फिर हम अपने पडोसी को ही क्या न खाए ? आप इस प्रकार तर्क करने वाले व्यक्ति को तर्कशास्त्री भले ही कह लें, पर आप उसे सभ्य व्यक्ति मानने को तैयार नही होगे। जहा तक बुद्धि का प्रश्न है, वह तो मनुष्य को नर-मास भक्षण की ओर ले जाएगी। इसलिए केवल बुद्धि से काम नही चलेगा, हृदय की उदात्त भावना भी चाहिए।"

मन और बुद्धि दोनो को यह बात जचती गई।

इसके बाद वक्ता महोदय ने प्राणिशास्त्र का विवेचन करते हुए ही बताया कि मातृभावना का विकास कैसे हुआ। उन्होने बताया कि मेढक और सर्प आदि सरीसृपो मे मा का कोई विचार नही होता। सन्तति का क्या हुआ—यह भी वे नही जानते। कहा जाता है कि सर्पिणी भूखी होने पर स्वय अपने अण्डो को भी खा जाती है। सरिसृप प्राणी एक दूसरे को माता और सन्तान के सम्बन्ध से देखते ही नही। इसके बाद नम्बर आता है स्तनपायी प्राणिया का। स्तनपायी प्राणियों मे माता अपने स्तन का दूध पिलाकर बच्चो को पालती है। चिडिया भी अपने अण्डे को सेती है और जब तक वे उडने योग्य नही हो जाते, तब तक उनकी देखभाल करती है। इन सब प्राणियो मे जब तक बच्चे को मा की आवश्यकता रहती है, या उसकी उपयोगिता रहती है, तभी तक उनमे माता और सन्तान का सम्बन्ध रहता है, उसके बाद बच्चे माता को भूल जाते है और माता बच्चे को भूल जाती है। प्राणियो के विकास की चरमावस्था पर है मनुष्य। वह सभ्य भी है, सुसस्कृत भी। इसीलिए उसके

मन में माता के प्रति सतत सम्मान की भावना रहती है, चाहे उसका उपयोग रहे या न रहे।

गभीरता के साथ उनकी वाणी की ओजस्विता भी बढती गई—'इसी प्रकार मानव-जीवन के विकास के साथ मातृभावना का भी विकास हुआ है। जिन वस्तुओ का उसके ऊपर ऋण है और जिनके उपकार भार से वह इस प्रकार लाभान्वित हुआ है कि उनसे उऋण होने की नही सोच सकता उन्हे भी उसने माता की तरह पूज्य बुद्धि से देखा है। जैसे नदी और गाय। जब धीरे धीरे मनुष्य को यह ज्ञान होने लगता है कि वह पृथ्वी भी जनता का पोषण और सरक्षण करती है इतना ही नही, मृत्यु के पश्चात् भी अपने वक्षस्थल मे शरण देती है, तब वह पृथ्वी को भी माता जानने लगता है। तभी उसके मुख से निकलता है—'माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या'—यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हू। इस प्रकार अपनी जन्मभूमि को अपनी माता के रूप म देखना विकास की अत्युत्कृष्ट अवस्था का लक्षण है। निकृष्ट अवस्था का नही।"

मैं मन मे सोचने लगा कि जब बकिम ने 'वन्देमातरम्' का मत्र दिया और अरविन्द घोप ने उस मन्त्र को चतुर्दिक् गुजित किया था, तब उनके मन की पृष्ठभूमि मे भी यही सब भावना रही होगी। इस विषय का प्रतिपादन करने वाले इस वक्ता ने उन ऋषियो की वाणी के मर्म का कितना सुन्दर विश्लेषण किया है।

वक्तव्य अभी समाप्त नही हुआ था। वक्ता महोदय कह रहे थे—'मैं इसी बात को थोडा और आगे बढाता हू। पिण्ड के स्तर पर जो स्थान माता का या राष्ट्र के स्तर पर मातृभूमि का है विश्व या ब्रह्माण्ड के स्तर पर वही स्थान जगदम्बा और महामाया या महादुर्गा का है। महामाया या महादुर्गा मन्दिर मे विराजमान किसी पाषाण प्रतिमा का नाम नही, बल्कि सृष्टि को जन्म देने वाली, उसका पालन-पोषण करने वाली आदिशक्ति का नाम है। वह जड नही है, चैतन्य की अधिष्ठात्री देवी है। इसकी प्रतिमा मन्दिर मे नहीं, मनुष्य के मन में प्रतिष्ठित है। यही जगज्जननी महामाया है। यह मनुष्य के हृदयासन पर विराजमान है। इसीका चिन्मय स्वरूप मनुष्य के हृदय को आलोकित करता है।"

मं—

इसके बाद उन्होंने अरविन्दकृत दुर्गास्तोत्र का एक अंश पढकर सुनाया, जिसका भाव इस प्रकार था

'हे मात दुर्गे ! जगत्श्रेष्ठ भारत जाति निविड तिमिर से आच्छन्न थी। मात तुम गगनप्रान्त मे क्रमश उदय हो रही हो, तुम्हारे स्वर्गीय शरीर की तिमिर-विनाशिनी आभा से उषा का प्रकाश हुआ है। आलोक-विस्तार करो, मात ! तिमिर-हरण करो, तिमिर का विनाश करो।"

जब वक्ता की वाणी ने विराम लिया तो जैसे जलती हुई मोमबत्तियो की रोशनी कुछ और तेज हो उठी।

अरविन्द सोसायटी के मत्री महोदय गोष्ठी की समाप्ति से पूर्व सब आगन्तुको का जब धन्यवाद करने लगे तब अचानक उनका ध्यान मेरी ओर गया। अब तक वे मुझे नही देख पाए थे। बोले—'आप नवागन्तुक प्रतीत होते हैं। आपका परिचय पाकर हम सबको प्रसन्नता होगी।"

वैचारिक धरातल पर तादात्म्य स्थापित करने वाली इस विचार-गोष्ठी मे मुझे आत्मगोपन की आवश्यकता नही थी। इससे पूर्व बगला देश की यात्रा मे कई स्थानो पर ऐसे प्रसग आए थे, अपने व्यक्तित्व को तिरोहित रखने की आवश्यकता अनुभव हुई थी। भारतीय दूतावास ने बगला देश मे प्रवश के पहले दिन ही मुझे जो आगाह किया था, वह भी इस आत्मगोपन मे कारण था। कई स्थाना पर मैंने अपना नाम 'अब्दुन कादिर' या ऐसा ही कुछ, जो उस समय ध्यान आ गया, बताया था और अपना वतन भी मैंने हिन्दुस्तान के बजाय मलयेशिया या सिंगापुर या हागकाग बताया था। इस प्रकार अजनबी बने रहने से लोगो से बातचीत करने और स्वाभाविक प्रतिक्रिया जानने मे आसानी होती थी।

परिचय देने पर मत्री महोदय ने कहा कि यदि अरविन्द की फिलासिफी मे आपकी कुछ रुचि हो तो आप भी अपने विचार प्रकट करिए।

जैसे आत्मगोपन की आवश्यकता नही थी, वैसे ही अपने विचारो के गोपन की भी आवश्यकता नही थी। शायद उस माहौल मे अपनी बात न कहना ही अनुचित होता।

पर कुछ कहने से पहले, उपस्थित लोगो से परिचय प्राप्त करने की उत्सुकता मन मे थी। आखिर बगला देश के बुद्धिजीविया मे अरविन्द के

विचारो या अध्ययन-मनन करने वाले ये लोग किस वर्ग के हैं, समाज के किस स्तर के हैं ?

पता लगा इस मण्डली मे हिन्दू थे, मुसलमान भी, भूतपूर्व जमीदार भी भूतपूर्व क्रान्तिकारी भी, ढाका विश्वविद्यालय के प्राध्यापक भी, वकील भी व्यापारी भी, प्रौढ और वृद्ध व्यक्तियो के साथ कुछ युवक भी। सभी प्राय सुशिक्षित थे। मुझे यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि जिन सज्जन ने अंग्रेजी म अपने विचार प्रकट किए, वे मुसलमान थे, विश्वविद्यालय म प्राध्यापक थे, और बगला देश म अरविन्द की फिलासिफी के विशेषज्ञ माने जाते थे।

कहा इस्लाम का यह रूप जो 'वन्देमातरम्' को सहन नही कर सकता जिसे उसमे मूर्तिपूजा की गन्ध आती है, और कहा इन मुसलमान बन्धु के य विचार !

मेरे सामने समस्या यह थी कि किस भाषा मे अपने विचार प्रकट करू। बगला मुझे आती नही थी। थोडी-बहुत समझ-भर लेता था, एक भी वाक्य बोल नही सकता था। अंग्रेजी म मैं बोलना नही चाहता था।

मैंने हिन्दी मे अपनी बात शुरू की।

कुछ ही वाक्य बोल पाया था कि कुछ युवक इसरार करने लगे— अंग्रेजी मे बोलिए। आप तो अंग्रेजी बहुत अच्छी तरह बोल सकते हैं।'

मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन की एक घटना याद आ गई।

शायद सन् १९३० के आसपास की बात है। उन दिनो प० इन्द्र विद्या वाचस्पति के 'अर्जुन अखबार की दिल्ली म ही नही, समस्त हिंदीभाषी जगत् मे, बडी धूम थी। हिन्दी के आज के सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र हिन्दुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' का तब तक जन्म नही हुआ था।

'अजुन' अखबार की जब रजत जयती मनाई जा रही थी तब उसमे विशिष्ट अतिथि के रूप मे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर उपस्थित हुए। जब उनसे आशीर्वाद के रूप मे कुछ शब्द कहने की प्रार्थना की गई तो वे खडे होकर हिन्दी मे बोलने लगे।

अंग्रेजो की और अंग्रेजी की धाक का जमाना था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजलि (बगला से अंग्रेजी मे अनूदित) पर विश्व साहित्य का विश्व प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार मिल चुका था, इसलिए विश्वकवि के अंग्रेजी ज्ञान की

भी बडी धूम थी। लोग उनकी अंग्रेजी सुनना चाहते थे, इसलिए श्रोताओं के एक वर्ग ने विश्वकवि से अंग्रेजी मे बोलने की प्रार्थना की।

विश्वकवि ने बड़े शान्त भाव से कहा—"अंग्रेजी न आपकी मातृभाषा है, न मेरी, फिर मैं अंग्रेजी म क्यो बोलू ?"

वे हिन्दी मे ही बोले।

उपस्थित लोगो के मन मे योगिराज अरविन्द के प्रति जैसी भक्ति है, वैसी ही भक्ति विश्वकवि के प्रति भी है, इसका मुझे आभास था। इसीलिए बगला देश के रेडियो से प्रतिदिन कुछ समय के लिए रवीन्द्र-सगीत अवश्य होता है।

उसके बाद किसीने अंग्रेजी के लिए आग्रह नही किया।

मैं एक और कारण से भी हिन्दी मे ही बोलना चाहता था। मैं देखना चाहता था कि बगला देश बन जाने के पश्चात् यहा की जनता मे हिन्दी मे कही गई बात को समझने की शक्ति कितनी है।

मैंने कहा—" कुछ वक्ताओ ने इस बात की चर्चा की है कि अरविन्द घोष ने भारत को 'सर्वोत्तम देश' (choicest land) कहा है। यो तो हरेक को अपना देश अच्छा लगता है, पर फिर भी भारत की अपनी कुछ ऐसी विशेषताए हैं जो अन्य किसी देश म सुलभ नही है। इस कथन म किसी अन्य देश की अवहेलना नही है। अन्य देश भौतिक दृष्टि से भारत से अधिक शक्तिशाली और समृद्ध हो सकते हैं, पर आध्यात्मिक दृष्टि से भारत जितना समृद्ध है, उतना अन्य कोई देश नही है। स्मरणातीत काल से यहा के ऋषि-मुनि इसी बात की घोषणा करते आए हैं। एक ओर मनुस्मृति' कहती है

'एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व-स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ॥

(समस्त ससार के मनुष्य इस देश के अग्रजन्मा मनीषियो से अपने अपने चरित्र और सदाचार की शिक्षा लेते रहे) तो दूसरी ओर विष्णु पुराण' मे इस देश की स्तुति करते हुए कहा गया है

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते,

भवन्ति भूयः पुरुषा. सुरत्वात् ॥

(देवता लोग गीत गाते हैं कि जिन्होंने भारत के भूमिखण्ड में जन्म लिया है, वे धन्य हैं, क्योंकि यह भूमिखण्ड स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों को देने वाला है। यहां के निवासी देवताओं से भी बढ़कर हैं।) देवताओं से बढ़कर होने का अभिप्राय यह है कि देवता केवल स्वर्ग के अधिकारी होते हैं, जबकि भारतवासी अपनी साधना के बल पर मोक्ष के भी अधिकारी बनते हैं।

"अन्य देश मनुष्य के बारे में क्या सोचते हैं, यह छोड़िए, परन्तु भारत में मनुष्य को केवल पंचतत्त्व का पुतला नहीं माना गया, यहां उसे 'अमृतपुत्र' माना गया। 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः'—यह यहां का शाश्वत घोष है। मैं और आप सभी अमृत के पुत्र हैं। ईसाइयत केवल हज़रत ईसा मसीह को 'खुदा का बेटा' मानकर रह गई, पर भारतीय संस्कृति की दृष्टि से हज़रत ईसा मसीह ही क्यों हरेक मनुष्य साक्षात् खुदा का बेटा है। जब संसार के सभी मनुष्य ईश्वर-पुत्र हैं, तो एक ही पिता की सन्तान होने के नाते वे सब परस्पर भाई-भाई हैं। उनमें आपस में कलह और युद्ध की गुंजाइश ही कहां है! गुंजाइश यदि किसी चीज़ की है तो केवल प्रेम की, मैत्री की, बन्धुता की और स्नेह-सद्भाव की। विश्वशान्ति तथा विश्वमैत्री का इससे बड़ा आधार और क्या हो सकता है?

"स्वामी विवेकानन्द जब यूरोप और अमेरिका की यात्रा करके लौटे थे, तब उन्होंने कहा था—'मैं पहले भारत से प्यार करता था, पर अब तो इसकी धूलि का एक-एक कण मेरे लिए अत्यन्त पवित्र है, तीर्थस्थल है।'—भारत भूमि के दिव्य माहात्म्य की अनुभूति यही है।

"पर मैं केवल इसी एक कारण से इस देश को 'सर्वोत्तम' नहीं कहता। इसकी विशेषता के कुछ भौगोलिक कारण भी हैं। अन्य देशों का भूगोल मनुष्यकृत है, पर इस भूखण्ड का भूगोल ईश्वरकृत है। यह बात सुनने में विचित्र-सी लगती है, पर यथार्थ है।··· अब तक हम हिमालय को भारत की उत्तरी सीमा मानते रहे हैं। इस हिमालय को महाकवि कालिदास ने 'देवात्मा' कहा है। पर हम भारत की प्राचीन मान्यताओं का ध्यान करें तो हिमालय के पार कैलाश और मानसरोवर हमारी उत्तरी सीमा है। कैला-

पर शिवजी के विराजमान होने का और कोई तात्पर्य नहीं है। कैलाश पर शिवजी का कोई मन्दिर नहीं है, कोई मूर्ति भी नहीं है, वह तो पौराणिक भाषा में भारत के भूगोल के वर्णन का एक तरीका है। देवता की स्थापना के द्वारा प्रत्येक भारतवासी के मन में कैलाश को जागृत सीमा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। • इसी कैलाश के साथ लगा है मानसरोवर। इस मानसरोवर से और उसके निकटवर्ती प्रदेश से भारत की दो महान नदियों का उद्गम होता है—एक सिन्ध और दूसरी ब्रह्मपुत्र। ब्रह्मपुत्र जाती है पूर्व की ओर और सिन्ध जाती है पश्चिम की ओर। मानसरोवर से निकली ब्रह्मपुत्र असम और बगला देश होती हुई बगाल की खाड़ी में गिरती है और सिन्ध नदी कश्मीर तथा पाकिस्तान में होती हुई अरब की खाड़ी में जाकर गिरती है। ये दोनों विशाल नदियां जैसे भारत की दो विशाल भुजाएं हैं—एक पूर्वी सीमा बनाती है और दूसरी पश्चिमी सीमा। इन दोनों विशाल नदियों के रूप में जैसे हिमालय ने इस भारत भूमिखण्ड को दोनों ओर से अपनी बाहों में भरकर आगोश में लिया हुआ है। इस प्रकार उत्तर में कैलाश और मानसरोवर, दक्षिण में हिन्द महासागर, और पूर्व में ब्रह्मपुत्र (अपनी सब सहायक नदियों के साथ) और पश्चिम में सिन्ध (अपनी सब सहायक नदियों के साथ)—यह है भारत का प्रकृति प्रदत्त भूगोल। मैं प्रकृति प्रदत्त को ईश्वरकृत कहता हूं। इसी भारतभूमि में मातृत्व का आधान करके बकिम बाबू ने 'वन्देमातरम्' का मन्त्र दिया और इसी भारतभूमि में दिव्यता का आधान करके अरविन्द घोष ने इसे जगदम्बा और महादुर्गा कहा। जब बकिम बाबू कहते हैं

तोमार प्रतिमा गडी मन्दिरे मन्दिरे•••

—तो उनका अभिप्राय किसी पाषाण प्रतिमा से नहीं होता प्रत्युत प्रत्येक भारतवासी के हृदयासन पर विराजमान दुर्गारूपी इसी भारतभूमि से होता है।

"यह केवल कल्पना विलास नहीं है, प्रत्युत प्रतिदिन का अभ्यास है। आज भी प्रत्येक निष्ठावान हिन्दू प्रात काल सोकर उठने के बाद भूमि पर पाव रखने से पहले इस श्लोक का पाठ करता है

समुद्रवसने देवि ! पर्वतस्तन मण्डले ।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

—हे धरतीमाता ! तुमने समुद्र का वस्त्र धारण किया है, पर्वत-गण तुम्हारे स्तन मण्डल के समान हैं, तुम साक्षात् विष्णुपत्नी हो, मेरे चरण तुम्हारा स्पर्श कर रहे हैं, मुझे क्षमा करना ।

" अन्त मे सकेत रूप से इतना और कहना चाहता हू कि परमात्मा ने जिस भारतभूमि को ऐसा प्राकृतिक भूगोल प्रदान करके एक इकाई बनाया था, उसे मनुष्य ने अपनी नासमझी से विभक्त करके कई इकाइयो मे बाट दिया। परन्तु जिस दिन इस भूमि की दिव्यता इस महादेश के निवासियो के मन मे पुन उभरेगी, उस दिन यह पुन एक इकाई बन जाएगी । मेरी दृष्टि मे योगिराज अरविन्द का ऐसा ही विश्वास है । देवी के सभी भक्तजन जानते हैं कि खण्डित प्रतिमा का पूजन नही होता । "

—यह कहकर मैं चुप हो गया ।

सभा विसर्जित हो गई ।

एक वृद्ध सज्जन मेरी तरफ बढे और मुझे गले लगा लिया ।

फिर धीरे से बोले—'क्या भारत के और लोग भी ऐसा ही सोचते हैं ?"

"मै औरो की बात नही कहता । मैं तो अरविन्द की बात कहता हू । मुझे उनके चिन्तन मे यही तत्व दृष्टिगोचर होता है, और इसी तरह मैं उनके पहले क्रान्तिकारी और बाद मे योगिराज—इन दोनो रूपों मे समन्वय कर पाता हू । अन्यथा मैं उनको पलायनवादी समझता ।"

वृद्ध सज्जन मुस्कराये । फिर बोले, "भैया रे ! तुम्हारी बात से तो मन-प्राण जुडा गए ।"

थोडी देर तक उनके चेहरे की ओर गम्भीरता से देखते हुए मैंने कहा —"महाराज त्रैलोक्य चक्रवर्ती आपके यहा ही रहा करते थे न ? "

"तो आप त्रैलोक्य महाराज को जानते हैं ?"

'ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जिसने भारत के क्रान्तिकारियो का इतिहास पढा हो और त्रैलोक्य महाराज को न जानता हो । जिस व्यक्ति ने १४ साल तक कालेपानी की सजा भोगी, उसके बाद पाकिस्तान की जेल मे जिसने

अनेक वर्षों तक लगातार कष्ट सहे, वीर सावरकर और भाई परमानन्द की पीढ़ी के उस क्रान्तिकारी को भारत के और लोग भले ही भूल जाए, पर वे तो भारत को नहीं भूले। इसीलिए तो, सन् ७१ के प्रारम्भ में, जब देश-विभाजन के पश्चात् वे पहली बार दिल्ली गए, तो उनकी आत्मा ने वहीं चिरविश्राम ले लिया, वे वापस लौटकर बंगला देश नहीं आ सके। क्या यह भी कोई दैवी विधान था कि उनका सारा जीवन जिस स्वप्न की पूर्ति में लगा रहा, वह अन्त में इस रूप में पूरा हुआ।"

त्रैलोक्य महाराज की स्मृति से जैसे वृद्ध सज्जन भी द्रवित हो उठे। फिर बोले—"पर आपको यह कैसे पता कि वे मेरे यहां रहा करते थे?"

"आदमी पहचान लेते है कयाफा देखकर,
खत का मजमूं भाप लेते हैं लिफाफा देखकर।।"

—यह कहकर मैं हस पड़ा।

वृद्ध सज्जन भी हस पड़े।

जब ये वृद्ध सज्जन गोष्ठी की समाप्ति के बाद मेरी ओर बढ़े चले आ रहे थे तब किसीने उनकी ओर इशारा करके मेरे कान में उक्त बात कही थी।

१५ अगस्त, सन् १८७२ में अरविन्द घोष का जन्म हुआ था। आश्चर्य की बात है कि उसके ठीक ७५ वर्ष बाद १५ अगस्त, सन् १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ। जिस महापुरुष के जन्म को अब शताधिक वर्ष बीत चुके हैं, वे अपने जीवन-काल में ही यह घोषणा कर गए थे कि एक दिन देश का विभाजन समाप्त होगा और भारत पुन अखण्ड होगा।

बंगला देश के आजाद होने पर योगिराज की भविष्यवाणी का एक अंश तो पूरा हो गया—कि पाकिस्तान टूट गया, शेष भविष्यवाणी…?

९

आखिर चक्रव्यूह से कैसे निकला ?

बंगला देश से मैं सिक्किम जाना चाहता था। उसके लिए संक्षिप्त और सीधा रास्ता था रंगपुर और पार्वतीपुर होकर जलपाईगुड़ी को। उधर से ही जाने का इरादा था। तब बंगला देश का उत्तरी भाग भी देखने को मिल जाता।

भारतीय दूतावास ने मुझे आगाह किया कि बंगला देश की उत्तरी सीमा पार करने मे कठिनाई हो सकती है, इसलिए यदि उधर से जाना हो तो पहले राजशाही जाकर भारतीय दूतावास के उपकार्यालय से मुझे सही स्थिति की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

दिन मे बंगला देश के एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी से भेंट हुई थी। वे १४ वर्ष के दीर्घकाल तक कारागार मे रहे थे। वे क्रान्तिकारियों की उस पुरानी पीढी के अवशेष थे जिसने कभी 'वन्देमातरम्' का गीत गाते हुए अपने यौवन काल मे अखण्ड भारत की उपासना की थी।

भारत मे क्रान्तिकारियों की वह पीढ़ी भले ही अस्तायमान हो, किन्तु बंगला देश में वह पीढ़ी अभी तक जीवित-जागृत है। और उसके मन-प्राण में अभी तक वही ओज और ऊष्मा विद्यमान है। उन क्रान्तिकारियों मे कई ऐसे हैं जो आजीवन अविवाहित रहकर क्रान्ति-यज्ञ के होता बने रहे। जिनकी जन्मकुण्डली में कारागार की कालकोठरी या ग्रन्थियन्धन लिखा हो, वे किसी अन्य को दुलहिन क्यों बनाते ?

जिनका जिक्र कर रहा हूं वे भी क्रान्ति-यज्ञ के ऐसे ही होता थे। वार्ता के प्रसंग मे रंगपुर होकर आने की बात उनके सामने भी आई होगी। वे शाम को आए और मुझसे कहने लगे—"आप उस सीमा से मत जाइए।"

"क्यों ?"

'हमारी सूचना यह है कि उस सीमा से जाना खतरे से खाली नही है। रगपुर के सीमान्त पर लगभग चालीस व्यक्तियो की हत्या हुई है। बगला देश मे चारो ओर फैली अराजकता के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रमाण आप देख चुके है। आप हमारे मेहमान है। अगर आपके साथ कुछ अवाछनीय घटित हो गया तो हम सदा के लिए कलकित हो जाएगे और अपने आपको कभी क्षमा नही कर पाएगे।"

पत्रकार का धर्म सकट से डरना नही है। फिर मुझे सिक्किम जो जाना है।'

"आप रगपुर जाने के बजाय वापस कलकत्ता जाइए, वह भी स्थल मार्ग से नही, वायुमार्ग से। यही सुरक्षा का माग है।'

मैने कहा— ढाका से कलकत्ता और कलकत्ता से सिलिगुडी—यह तो बहुत टेढा और खर्चीला रास्ता है जब कि यहा से जलपाईगुडी सीधा, सक्षिप्त और अल्प व्यय-साध्य है।"

उनको लगा कि शायद अधिक खर्च से बचने की खातिर मैं जलपाईगुडी वाले रास्ते की जिद कर रहा हू। तब मेरे कान के पास मुह लाकर बोले— 'पैसे की चिन्ता मत कीजिए। यहा से सीधा कलकत्ता जाइए हवाई जहाज से। हवाई जहाज के टिकट का पैसा मैं दूगा।'

मैं उनकी आत्मीयता से अभिभूत हो गया। आखिर मेरा और उस बुजुर्ग क्रान्तिकारी का क्या रिश्ता था ?

क्या अखण्ड भारत की प्रतिमा के उपासक, अविभक्त भारत को स्वदेश कहकर उसके पीछे अपना यौवन और सर्वस्व स्वाहा कर डालने वाले, उस व्यक्ति के अन्त करण मे, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दुरभि-सधि का शिकार होकर अब विदेश बने भारत के एक पत्रकार के प्रति वही आत्मीयता का स्थान है जो भारत के अविभक्त रहने पर भी शायद दुलभ होता ?

उनके हृदय को और अधिक ठेस पहुचाना हृदयहीनता होती। मैंने हथियार डाल दिए।

उनके मुख पर हर्ष की रेखा उभर आई।

उधर मेरे 'वीसा' की अवधि समाप्ति के निकट आ गई।

तब राजशाही होकर रगपुर और जलपाईगुडी जाने का मार्ग भी नहीं

बचा। दिन-भर मे ढाका से कलकत्ता की एक ही उड़ान होने के कारण इतनी जल्दी विमान का टिकट मिलना भी सहज नही था। मैंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ढाका-स्थित प्रतिनिधि, अपने सहयोगी दीप्ति सेन से कहा, 'मेरे लिए विमान के टिकट की व्यवस्था कीजिए और यदि टिकट मिलने मे विलम्ब हो तो 'वीसा' की अवधि बढवाने का प्रयत्न कीजिए।"

मुझे विश्वास था कि श्री दीप्ति सेन प्रतिष्ठित पत्रकार हैं और अर्से से ढाका मे रह रहे हैं, इस कारण अपनी जान-पहचान के आधार पर उक्त दोनो मे से कोई एक काम तुरन्त करवा सकेंगे।

परन्तु अगले दिन बन्धुवर दीप्ति सेन ने आकर खबर दी—"वीसा की अवधि बढवाने मे कम से कम दस दिन लगेंगे। और हवाई जहाज का टिकट आपको नही मिल सकता।"

मैं चौंका।

वीसा की अवधि बढवाने मे कम से कम दस दिन लगने की बात तो कुछ कुछ समझ मे आ गई। नौकरशाही और लालफीताशाही दोनो सगी बहनें है और जहा उनका राज्य होता है वहा किसी भी काम मे अनावश्यक विलम्ब स्वाभाविक है। स्वय भारत मे ही मैं इसका बखूबी अनुभव कर चुका हूँ। १६ दिसम्बर, ७४ को मैंने अपने पासपोर्ट मे बगला देश का नाम जोडने के लिए प्रार्थनापत्र दिया था। उस सबध मे जाच-पडताल के लिए गुप्तचर विभाग के अधिकारी मेरे पास १६ फरवरी, सन् १६७५ को आए, जब कि मुझे बगला देश से लौटे हुए भी महीना-भर हो चुका था। पर हवाई जहाज का टिकट न मिलने की बात समझ मे नही आई।

मैंने दीप्ति सेन से कहा—"मैं समझता था कि आपको तो टिकट अनायास ही मिल जाएगा।"

दीप्ति सेन ने कहा—"यह केवल मेरा ही सवाल नही है। यहा आपके लिए टिकट कोई भी नही खरीद सकता। आप विदेशी जो है।"

जो भारतवासी कभी (सन् ७१ मे) बगला देशवासियो के लिए स्वदेशवासियो से भी अधिक महत्त्वपूर्ण थे, आज वे इतने अधिक विदेशी हो गए हैं कि उन्हें विमान का टिकट भी नही मिल सकता? मुझसे नही रहा गया। मैंने अपने मन का आक्रोश प्रकट करते हुए कहा—"भारतवासी या विदेशी

होना पाप है क्या ?"

"नही नहीं, आप बात को समझ नही रहे है। बगला देश की मुद्रा मे आप टिक्ट नही खरीद सक्ते, क्योकि आप बगला देश के वासी नही है। भारतीय मुद्रा यहा चल नही सकती—वैसे भी बीस रुपये (भारतीय) से अधिक लेकर आप बगला देश म घुस नही सक्ते। अब तो केवल एक ही उपाय है—आप कही से भी डालर या पौण्ड लाए तो आपके लिए टिकट खरीदा जा सकता है, अन्यथा नही।

थोडी देर रुक्कर दीप्ति सेन ने एक उपाय और बताया। उनका कहना था कि कोई मेरे लिए कलकत्ता मे ढाका से कलकत्ता की वापसी का टिकट भारतीय मुद्रा म खरीदे और मुझे वह टिकट डाक से यहा भेज दे। कलकत्ता म तो भारतीय मुद्रा मे टिक्ट खरीदा ही जा सकता है। तब आप यहा से कलकत्ता जा सकते हैं।

पर इसमे भी इतनी देर लग जायगी कि डाक के आने-जाने म ही मेरे वीसा की अवधि समाप्त हो चुकी होगी।

अब मैं स्थिति की गभीरता को समझा। डालर या पौण्ड मैं कहा से लाऊ। स्थलमार्ग से किसी दिशा म सीमा पार करना खतरे से खाली नही था। हवाई जहाज का टिकट मिलना सभव नही। इस विडम्बना से कैसे निबटा जाए।

कलकत्ता मे जब मैंने हवाई जहाज का टिकट खरीदा था तभी मुझे कहा गया था कि वापसी टिकट यही से लेकर जाओ नही तो परेशान होगे तब मैं उस बात का मर्म नही समझा था।

पर अब तो फस गया।

नियत अवधि से अधिक ठहरने पर चाहे जब गिरफतार किया जा सकता हू। आपात स्थिति के कारण कही सुनवाई भी नही होगी। मैंने किस कुघडी म साथियो के मना करने पर भी बगला देश आने का फैसला किया था।

चक्रव्यूह मे घुस तो गया हू उससे बाहर निकलने का रास्ता नही सूझता।

पर चक्रव्यूह से बाहर निकले बिना गति भी तो नही।

आखिर मकर सक्रान्ति के दिन, जिसके बाद मेरा बगला देश मे ठहरना अवैध होता, मैंने अलस्सुबह ढाका से जैसोर जाने वाली पहली बस पकडी।

फिर वही 'फेरियो' का चक्कर। यहा भी तीन बार नाव से नदी पार करनी पडी जिसमे से एक बार ब्रह्मपुत्र का भी नम्बर आया। भागीरथी गगा यदि बगला देश मे जाकर वही पद्मा और वही बूटी गगा बन गई है, तो ब्रह्मपुत्र वहा जमुना कहलाती है। अब से कई साल पहले असम मे भी ब्रह्मपुत्र के दर्शन कर चुका हु। पर बगला देश मे ब्रह्मपुत्र का जो असीम वैभव-विस्तार है, वह अतुलनीय है। एक किनारे पर खडे होकर दूसरा किनारा नजर ही नही आता—ओर-छोरहीन समुद्र जैसा ही लगता है। स्टीम लाच से पार करने मे भी डेढ घटा लगा था।

जैसोर तक पहुचने मे तीन बज गए। जैसोर से आगे बस नही। पर सीमा अभी १५ मील दूर और मुझे जाने की जल्दी।

तीन पहियो वाला स्कूटर मिल गया।

जैसोर का किला देखने की इच्छा थी—जिसमे बैठकर पाकिस्तानी सेना ने ऐसी सुदृढ मोर्चाबन्दी की थी कि यदि भारतीय सेना मुख्य मार्ग से आकर यहा उलझती तो कई सप्ताह तक यही उलझी रहती। पर आज की तारीख मे बगला देश की सीमा से पार हो जाना मेरे लिए अनिवार्य था।

बगला देश की सीमा चौकी—पेट्रापोल—जब पहुचा तब चार बज गए थे। बनगाव से शाम को ५ बजे सियालदा के लिए जाने वाली रेलगाडी पकडना चाहता था, पर अभी तो सीमा चौकी के इम्तहान से गुजरना था। वह मिनटो का नही घण्टो का काम था।

पत्रकार होने की दुहाई दी, पर वह काम कही आई। जवाब मिला—"लाइन मे खडे हो जाओ, जब नम्बर आएगा, अन्दर बुला लेंगे।"

यदि सूर्यास्त होने तक नम्बर नही आता है और चौकी पर पर्याप्त रोशनी के अभाव मे उसके बाद तलाशी का कार्यक्रम अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया जाता है, तो मैं वीसा की अवधि से अधिक बगला देश मे ठहरने का मुजरिम ठहराया जा सकता हू।

पर सूर्यास्त से पहले ही नम्बर आ गया।

मेरा सूटकेस खोलकर देखा गया। सबसे ऊपर बगला देश-सम्बन्धी दो सचित्र और सुन्दर छपी पुस्तिकाए रखी थी। निरीक्षक ने पूछा—"ये कहा से आई ?"

"आई नही, आपकी सरकार की ओर से भेंट की गई।"

इस बीच मेरे पासपोर्ट पर वह नजर डाल चुका था। बोला—"अच्छा आप पत्रकार हैं। फिर तो हमारे अतिथि हैं।"

इसके बाद उसका रुख कुछ बदला। फिर भी तलाशी जारी रही। पूछा—"आपके पास भारतीय या बगला देश की कितनी मुद्रा है ?"

मैंने अपना पर्स उसके हाथ मे दे दिया। उसने मुद्रा गिनकर कहा—"ये तो बीस रुपये से ज्यादा है ?"

"इसमे से जितनी मुद्रा आप उचित समझें, मेरे पर्स मे रहने दें, बाकी निकाल लें।"

इसकी शायद उसे आशा नही थी। कुछ हतप्रभ हुआ।

इतने मे उसकी नजर मेरी अगूठी पर पड गई। पूछा—"सोने की है ?"

मैंने कहा—' हा।"

उसने कहा—"यह आपने 'डिक्लेयर' नही की ?"

मैंने कहा—"जब बगला देश मे प्रवेश किया था, तब किसीने मुझसे इसे डिक्लेयर करने को नही कहा। अपने-आप यह बात मुझे ध्यान नही आई।"

उसने तेवर बदलकर कहा—"यह तो आप नही ले जा सकते।"

"श्रीमन् ! मैं इस अगूठी को पिछले २५ सालो से पहन रहा हू। यह मेरी शादी की अगूठी है और अब तक मेरे शरीर का हिस्सा बन चुकी है। कितनी घिस चुकी है, यह भी देख लीजिए। परन्तु यदि आपको शक है कि मैंने यह बगला देश से खरीदी है तो आप इसे मेरी अगुली से निकाल लीजिए, मैं बिल्कुल आपत्ति नही करूगा।" और यह कहकर मैंने अपनी अगुली उसके आगे कर दी।

वह और हतप्रभ हुआ। फिर उसने सीधे ढग से पूछा—"आपके पास कोई गैरकानूनी सामान हो तो स्वय बता दीजिए।"

' मेरे पास कोई गैरकानूनी सामान नही है। आप कहे तो बिस्तर और हैण्ड बैग भी खोलकर दिखा दू। सूटकेस आप देख ही चुके हैं।"

मेरे यह कहने के बाद वह बिल्कुल निरस्त हो गया। उसने कुली को बुलाकर कहा—"यह सावादिक (पत्रकार) हैं—हमारे सम्माननीय अतिथि। इन्हे ठीक से बेनापोल—भारतीय सीमा—तक पहुचाकर आओ।"

इस अग्निपरीक्षा से मैं दस मिनट मे ही पास होकर निकल आया, इस पर लाइन मे लगे अन्य लोग चकित हुए, क्योंकि हरेक व्यक्ति की तलाशी में २५-३० मिनट लगना तो मामूली बात थी। फिर तलाशी भी कैसी—जिसमे ऐनक का खोल, जूते का तला, हुक्के की नली और गुडगुडी, फाउण्टेन पेन और टूथपेस्ट की ट्यूब तथा कोट-कमीज-वास्कट की जेबें और सीवन—कुछ भी नही छूट पाता था।

भारतीय सीमा पर जो अफसर मिला, उसने पूछा—"बगला देश की हालत कैसी है ?"

मैंने कहा—"अब एक वाक्य मे क्या बताऊ। यही कह सकता हू कि भारत मे जितनी अराजकता और महगाई है उसकी कम से कम दस गुनी बगला देश मे है।"

अफसर ने कहा—"हा, आज ही नमक से लदे आठ ट्रक हमने अपनी सीमा से उनकी सीमा मे भेजे हैं।" जैसे अराजकता और महगाई दोनो का इलाज नमक के बोरो मे छिपा हो ! क्या भारत का नमक खाने के बाद वहा भारत-विरोधी भावना नही पनपेगी ?

रात को दस बजे जब कलकत्ता पहुचा तब यही सन्तोष था कि वीसा की अवधि समाप्त होने से दो घटे पहले ही मैं बगला देश से निकल आया।

१०

मुजीब से मुजीब तक

मकर सक्रान्ति से अगले दिन, जब मैं सिक्किम के लिए, रेल से सिलिगुडी जा रहा था, तब एक सैनिक से भेंट हुई। वह सैनिक अण्डमान निकोबार से आया था और अपनी बहन की शादी पर वह भी सिलिगुडी जा रहा था।

मैंने बगला देश मे भी रेल का सफर किया था। उसके बाद भारत के इस रेल सफर मे एक स्पष्ट अन्तर नजर आ रहा था। बगला देश म हरेक यात्री के मन मे एक अज्ञात आतक और आखो में एक अदृष्ट भय का-सा भाव दिखाई देता था, जब कि यहा भारत मे, किसी यात्री के चेहरे पर वैसे किसी भाव की छाया भी नही थी।

हो सकता है, यह मेरे मन का भ्रम हो, या वहा जिस प्रकार की दुश्चिन्ताओ से घिरा वातावरण मुझे मिला था, उसका असर हो, पर यह नजरन्दाज करना मुश्किल था।

बगला देश मे जो कुछ देखा-सुना था और वहा के भविष्य के बारे मे मेरे मानस पटल पर जो तस्वीर बनी थी, उससे मन पर बोझ था और मैं चाहकर भी उस बोझ से उबर नही पा रहा था।

बातचीत के प्रसग मे उस सैनिक यात्री को जब पता चला कि सीधा बगला देश से आ रहा हू, और पत्रकार हू, तो उसने वहा के हालचाल के बारे मे जिज्ञासा प्रकट की।

मैंने वहा की अराजकता और महगाई का थोडा-बहुत हाल बताया तो मेरे अन्त करण की व्यथा भी शायद मेरे मुख की रेखाओ मे झलक आई होगी। उसने पूछा—'फिर अब इधर कहा जा रहे है ?"

'सिक्किम और भूटान जाने का इरादा है।"

"इस जनवरी की भयकर सर्दी के मौसम मे ?"

' गर्मियो म ता सैर-सपाटे के इच्छुक और लोग भी चले जाते हैं। पर पहाड का निजी सौन्दय तो सर्दियो मे ही दिखता है—जब वहा भीड भडक्का नही होता और प्रकृति अपने एकान्त नैसर्गिक सौन्दर्य म आकर्षक रूप धारण कर लेती है।'

'तो या कहिए कि अब आप तफरीह के लिए जा रहे हैं ?

बात थोडी-सी चुभने वाली थी।

सत्य भी कभी कभी चुटीला हो जाता है !

पर इससे तुरन्त इन्कार करने की हिम्मत नही हुई।

उस सैनिक ने किसी हल्केपन से बात नही कही थी। बगला देश की व्यथा कथा सुनने के बाद यह उसकी सहज प्रतिक्रिया थी। मैं मन मे सोचता था कि कचनजघा की हिम धवल चोटियो मे और सिक्किम के नाना प्रकार के पुष्पा और पादपो से अल्वृत सघनवनो की स्तब्धता मे इस मानसिक बोझ की गठरी को फेंक आऊगा।

पर क्या वैसा हो पाया ?

नही भूटान मैं जा नही सका—उन्ही दिनो वहा भीषण हिमपात हुआ था और आवागमन अवरुद्ध हो गया था पर गगटोक और कलिम्पोग का सम्मिलित सौदर्य भी उस बोझ से उबरने मे सहायक नही हो पाया।

बगला देश की घटनाआ का रग इतना गहरा था कि यात्रा से सकुशल लौटकर घर पहुचने के बाद भी कई दिन तक, मैं रात को अक्सर उठकर बैठ जाता और मन मे सोचने लगता कि बगला देश का क्या होगा ? भिखारियो और शरणार्थियो की लम्बी लम्बी कतारें स्वप्न मे दिखाई देती।

चाहे तो, आप इसे मेरी भावुकता कह सकते है। पर मानव का सबसे बडा अभिशाप यही है कि वह सवथा हृदयहीन नही बन सकता।

मैं बगला देश को भूल नही सका—वह मेरे मन प्राण पर छाया रहा।

पर व्यथा के इस विशाल रेगिस्तान मे एक ही नखलिस्तान नजर आता था और वह था बगबधु शेख मुजीबुर्रहमान। विदेशो के सब समाचार-पत्र कह रहे थे कि बगला देश को विपत्ति के इस पारावार से यदि कोई बचा सकता है तो केवल बगबधु। भारत की जनता भी यही समझती थी। बग

बन्धु की कुर्बानियो को लोग भूले नही थे और वे बंगला देश के एकछत्र नेता थे। बल्कि भारत के लोगो के मन मे अपने देश के नेताओ के बजाय भी बंगबन्धु के प्रति कही अधिक स्नेह और सम्मान का भाव था।

होता भी कैसे नही! जिस व्यक्ति ने सारे बंगला देश को याह्याखा के शासन के विरुद्ध लोहे की एक सुदृढ दीवार की तरह खडा कर दिया, जिसने स्वाधीन बंगला देश का स्वप्न जनता के मन मे जगा दिया, जिसने पाकिस्तान के दोनो पार्श्वों मे हुए चुनावो मे सर्वाधिक मत पाने वाले राजनैतिक दल के नेता होने के नाते पाकिस्तान का प्रधान मंत्री बनने का अधिकार पा लिया, और याह्याखां ने वैसी घोषणा भी कर दी, किन्तु जिसे तख्त के बजाय तख्ता मिला—याह्या ने उसे गिरफ्तार ही नही कर लिया, प्रत्युत उसका वध कर डालने का भी आदेश दे दिया, जिस मुजीब के लिए जेल के अन्दर ही कब्र खोदकर तैयार कर दी गई ··

किन्तु इसी बीच पासा ऐसा पलटा कि पाकिस्तान की सेना ने भारतीय सेना और मुक्तिवाहिनी की सयुक्त कमान के आगे आत्मसमर्पण कर दिया, याह्याखा अपदस्थ हो गए और जनाब जुल्फिकार अली भुट्टो ने सयुक्त राष्ट्रसंघ मे अश्रुपूरित नेत्रो से विदा लेते हुए पाकिस्तान की गद्दी सभाली, ··

वही मुजीब जब पाकिस्तान की जेल से रिहा होकर लन्दन होते हुए दिल्ली पहुचे थे, तब भारतीय जनता को इस व्यक्ति मे नेताजी सुभाष बोस की झलक दिखाई दी थी और वह वैसे ही उन्मत्त हो उठी थी जैसे नेताजी सुभाष बोस की वापसी पर हो उठती।

जिस व्यक्ति के जीवन की कोई आशा शेष नही बची थी, जब पूरे नौ मास के बाद उसी व्यक्ति की आवाज बंगला देशवासियो ने दिल्ली के पालम हवाई अड्डे से प्रसारित होती हुई सुनी, तो वे अपने प्रिय नेता की परिचित वाणी को पहचानकर हर्षोन्मत्त हो उठे।

७ मार्च, सन् १९७१ को रेसकोर्स के मैदान मे शेख मुजीब ने अपने देशवासियो को सम्बोधित करते हुए कहा था—'अपने घरो से निकल पडो। जो भी हथियार तुम्हारे पास मौजूद है, उसीसे दुश्मन का मुकाबला करो। जिस भी तरह हो, देश को बचाओ और किसी भी कीमत पर पाकिस्तान की नृशस तानाशाही से बंगला देश को मुक्त करो।"

जनता बिछी हुई थी • हजारो की सख्या मे नही, लाखो की सख्या मे।

उसी रेसकोर्स मैदान मे बगला देश की जनता को भीषण सघर्ष मे विजय के लिए बधाई देते हुए बगबन्धु ने उन तीस लाख स्वदेशवासियो का जिक्र किया जो मुक्ति सग्राम मे मारे गए और उन हजारों अबलाओं की चर्चा की जो पाकिस्तानी दरिन्दो के हाथो अपमानित और शीलभ्रष्ट की गईं, तो शेख का गला भर आया, आखें अश्रु विगलित हो उठी और पाकिस्तान के जघन्य कृत्यो के लिए आवेश मे मुट्ठिया भिच गईं। यही सब प्रतिक्रिया जनता मे भी दृष्टिगोचर हुई।

जनता को विश्वास हो गया कि हमारा मसीहा आ गया—हमारा बन्धु, हमारा त्राता, हमारा सरक्षक, हमारा आत्मीय, हमारा नेता, हमारा बेताज बादशाह—अब हमे किसी चीज की चिन्ता नही। अब 'सोनार बागला बनकर रहेगा।

पर ६ मास भी नही बीते थे कि ढाका की दीवारो पर 'शेख मुजीब मुर्दाबाद' और 'शेख इस्लाम का दुश्मन है' के नारे सुनाई देने लगे।

शेख विरोधी नये-नये सगठन उभरने लगे। विरोध मे जो सार्वजनिक सभाए होती उनमे श्रोताओ की सख्या बढने लगी। मौलाना अब्दुल हमीद खा भाशानी इस विरोध को सगठित करने लगे। हालांकि उनका उद्देश्य स्पष्ट नही था। कभी मौलाना भाशानी चीन पक्षपाती रुख अपनाते और कभी विशुद्ध राष्ट्रवादी और समाजवादी।

भाशानी अपने विचारो म स्पष्ट रहे हो, या न रहे हो, पर शेख के विरोध मे जिस तरह वातावरण घनीभूत होता जा रहा था, उसका परिणाम यह हुआ कि अतिवामपथी और अतिदक्षिणपथी दोनो ही भाशानी के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे।

उधर पाकिस्तानी तत्त्व यह प्रचार करने लगे कि शेख इस्लाम-विरोधी हैं, क्योकि उन्होने भारत और रूस से दोस्ती कर रखी है।

स्थिति यहा तक पहुच गई कि किसी सार्वजनिक सभा मे, जिसमे स्रोता हजारो की सख्या मे होते, जब शेख अपनी योजनाओं के पक्ष मे जनता से हाथ उठाने को कहते तो उनके समर्थन मे मुश्किल से एक या दो दर्जन हाथ

बगला देश की जनता ने अपने नेता का आह्वान सुना और सचमुच वह सिर पर कफन बाध अपने घर से निकल पडी।

पूरे नौ मास तक बगला देश मे खून की होली खेली गई। पाकिस्तानी पिशाचो ने निरीह जनता का खून बहाया और जनता ने पाकिस्तानी पिशाचों को चैन से नही बैठने दिया। आखिर भारतीय सेना के सहयोग से मुक्ति वाहिनी का और जनता का स्वप्न पूरा हुआ।

नौ मास के इस भीषण रक्तपात के बाद १६ दिसम्बर, सन् १६७१ को नवीन बगला देश का उदय हुआ।

तब १० जनवरी, १६७२ का दिन आया। अचानक जनता को पता लगा कि शेख मुजीब आ रहे है। ढाका सारी रात सोया नही। रात रात मे सडको पर तोरण द्वार बनाए गए, उनपर पुष्पमालाए सज गई। क्लबो मे और भोजनालयो मे जनता को मुफ्त मिठाई बटने लगी। काजी नजरुल इस्लाम और टैगोर के गीतो से ढाका रात-भर गूजता रहा।

दिन के ठीक पौने दो बजे बगबन्धु का विमान ढाका के हवाई अड्डे पर पहुचा। भीड के मारे पुलिस और सेना के सब बन्धन टूट गए। बगबधु को दी जाने वाली सलामी भी भीड मे खो गई। चारो ओर भीड ही भीड—सडको पर, बाजारो मे, चौराहो पर, मकानो की छतो पर।

जैसे लका पर विजय के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने पर सारी अयोध्या उमड पडी थी, ठीक वैसे ही अपने प्राणप्रिय नेता की वापसी पर सारी ढाका नगरी उलट पडी थी।

फिर वही रेसकोर्स का मैदान।

जहा ७ मार्च, १६७१ को बगबन्धु ने पाकिस्तान की तानाशाही से मुक्ति के लिए अपनी जनता को ललकारा था, जहा पाकिस्तान के ७२ हजार सैनिको ने जनरल नियाजी के नेतृत्व मे जनरल अरोडा के सामने आत्मसमर्पण किया था।

और वही रेसकोर्स का मैदान जिसके एक कोने पर सिद्धेश्वरी का मन्दिर था, जिसमे कभी तरुण क्रान्तिकारी क्रान्ति की दीक्षा लिया करते थे।

जिस रेसकोर्स मैदान तब हवाई अड्डे से पहुचने मे केवल १५ मिनट लगते थे, उस दिन डेढ घटे से कम नही लगा था। सडको पर जैसे जनता ही

जनता बिछी हुई थी ' हजारो की सख्या मे नही, लाखो की सख्या मे।

उसी रेसकोर्स मैदान मे बगला देश की जनता को भीषण सघर्ष मे विजय के लिए बधाई देते हुए बगबन्धु ने उन तीस लाख स्वदेशवासियो का ज़िक्र किया जो मुक्ति सग्राम मे मारे गए और उन हजारो अबलाओ की चर्चा की जो पाकिस्तानी दरिन्दो के हाथो अपमानित और शीलभ्रष्ट की गई, तो शेख का गला भर आया, आखें अश्रु-विगलित हो उठी और पाकिस्तान के जघन्य कृत्यो के लिए आवेश मे मुट्ठिया भिच गई। यही सब प्रतिक्रिया जनता मे भी दृष्टिगोचर हुई।

जनता को विश्वास हो गया कि हमारा मसीहा आ गया—हमारा बन्धु, हमारा त्राता, हमारा सरक्षक, हमारा आत्मीय, हमारा नेता, हमारा बेताज बादशाह—अब हमे किसी चीज़ की चिन्ता नही। अब 'सोनार बागला' बनकर रहेगा।

पर ६ मास भी नही बीते थे कि ढाका की दीवारो पर 'शेख मुजीब मुर्दाबाद' और 'शेख इस्लाम का दुश्मन है' के नारे सुनाई देने लगे।

शेख-विरोधी नये-नये सगठन उभरने लगे। विरोध मे जो सार्वजनिक सभाए होती उनमे श्रोताओ की सख्या बढने लगी। मौलाना अब्दुल हमीद खा भाशानी इस विरोध को सगठित करने लगे। हालाकि उनका उद्देश्य स्पष्ट नही था। कभी मौलाना भाशानी चीन पक्षपाती रुख अपनाते और कभी विशुद्ध राष्ट्रवादी और समाजवादी।

भाशानी अपने विचारो मे स्पष्ट रहे हो, या न रहे हो, पर शेख के विरोध मे जिस तरह वातावरण घनीभूत होता जा रहा था, उसका परिणाम यह हुआ कि अतिवामपथी और अतिदक्षिणपथी दोनो ही भाशानी के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे।

उधर पाकिस्तानी तत्त्व यह प्रचार करने लगे कि शेख इस्लाम विरोधी हैं, क्योकि उन्होने भारत और रूस से दोस्ती कर रखी है।

स्थिति यहा तक पहुच गई कि किसी सार्वजनिक सभा मे, जिसमे श्रोता हजारो की सख्या मे होते, जब शेख अपनी योजनाओ के पक्ष मे जनता से हाथ उठाने को कहते तो उनके समर्थन मे मुश्किल से एक या दो दर्जन हाथ

उठते और बाकी जनता गुमसुम जड भरत की तरह बैठी रहती ।

जहा तक शेख की वाणी के जादू का सवाल है, बगला देश के एक वयोवृद्ध मुस्लिम नेता ने कहा था—"मैंने गाधी, नेहरू और जिन्ना—तीनो के भाषण सुने है और उन तीनो का जनता पर कितना प्रभाव पडता था, यह भी अपनी आखो से देखा है । परन्तु बगबन्धु जिस सहज भाव से अनायास ही जनता की भावनाओ को उद्वेलित कर देते हैं वह अनुपम है, अद्वितीय। जैसे बगबन्धु की वाणी मे जनता की चिरप्रसुप्त आकाक्षाए अभिव्यक्त हो उठती हैं ।"

बगबन्धु की लोकप्रियता का यह जादू टूट क्यो गया ? कहा गया वक्तृत्व कला का वह चमत्कार ?

इसका वर्णन करने से पहले मैं कुछ ऐसी अफवाहो की चर्चा करना चाहता हू जो मैंने बगला देश के अपने प्रवास-काल मे सुनी थी ।

पहली अफवाह

बगला देश का एक नौजवान कई साल विदेश मे रहकर स्वदेश लौटा तो अपने साथ स्विट्जरलैण्ड की एक कार भी ले आया । उसकी यह खूबसूरत छोटी-सी कार जब ढाका की सडको पर दौडती तो सबकी नजरें उस कार पर पडती और लोग उसकी खूबसूरती को सराहते ।

उस कार को ढाका की सडको पर चलते एक सप्ताह भी नही बीता था कि कार गायब हो गई ।

युवक ने पुलिस म रिपोर्ट दर्ज करवाई । पर कोई फल नही निकला । युवक परेशान था । तभी उसे अपने गुरु की याद आई ।

वह ढाका विश्वविद्यालय मे पढा था । उस विश्वविद्यालय मे प्राचार्य थे सैयद नजरुल इस्लाम जो उस समय बगला देश के राष्ट्रपति थे ।

युवक राष्ट्रपति के पास गया । राष्ट्रपति भी अपने भूतपूर्व छात्र को पहचान गए । युवक ने राष्ट्रपति को घटना सुनाई और पुलिस की निष्क्रियता की ओर सकेत किया ।

राष्ट्रपति न प्रधान मन्त्री को चिट्ठी लिखी कि इस मामले को देखें ।

प्रधान मंत्री थे बगबंधु। बगबन्धु ने अवामी लीग के अध्यक्ष को चिट्ठी लिखी। अवामी लीग के उस समय अध्यक्ष थे श्री कमरुज्जमा, जो बाद में मन्त्रि-मण्डल में भी शामिल किए गए।

कमरुज्जमा को जब प्रधान मंत्री की चिट्ठी मिली तो उन्होंने एक दिन उस युवक को अपने घर चाय पर बुलाया।

युवक की अच्छी आवभगत हुई।

चायपान के बाद करुमज्जमा उस युवक को लेकर अपने गैरेज की तरफ आए। अलग-अलग चार गैरेज और उनमें अलग-अलग चार कारें।

कमरुज्जमा ने उन चारों कारों की ओर बारी-बारी से इशारा करते हुए कहा—"कामरेड, इन चारों कारों में से तुम्हें जो कार अच्छी लगे, वह ले सकते हो।"

युवक हैरान था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या नाटक हो रहा है। उसने कहा—"सर! मेरी समझ में नहीं आता कि आप ये कारें मुझे क्यों दिखा रहे हैं।"

कमरुज्जमा ने कहा—"बगबन्धु ने लिखा है कि तुम्हारी कार गायब हो गई है। राष्ट्रपति के तुम प्रिय छात्र रहे हो। तुम्हें कार की सख्त जरूरत है, इसलिए इन चारों कारों में जिस कार को तुम चाहो ले जा सकते हो।"

युवक ने कहा—"इन चारों कारों में से कोई एक कार लेकर मैं क्या करूंगा। मुझे तो अपनी कार चाहिए। मैं बड़े शौक से उसे लाया था।"

कमरुज्जमा ने कहा—"तुम्हारी कार तो तुम्हें नहीं मिल सकती।"

"क्यों?"

"क्योंकि वह कार तो मेरे लड़के को पसन्द आ गई है, इसलिए वह उसी के पास रहेगी। तुम इनमें से कोई कार ले सकते हो।"

दूसरी अफवाह

एक बैंक में डाका पड़ा। डकैत सशस्त्र थे और बैंक को अच्छी तरह लूटने में लगे थे।

पुलिस को इत्तला मिल गई और पुलिस समय पर पहुंच गई।

हू।"

श्री नासिर स्वय सीमा पर जाएगे। रक्षावाहिनी के जवाना को सकेत करगे कि अमुक ट्रक का इधर आने दिया जाए और वे ट्रक व्यापारी के पास पहुच जाएगे।

इस काम की फीस ?

फीस-वीस क्या होती है ? मोटर का पहिया भी विना ग्रीज के नही चलता। मोटर का पहिया ही क्यो, ससार की किसी भी मशीन का कोई पुर्जा विना ग्रीज के काम नही करता।

और तो और, नौकरशाही की मशीनरी इतनी वेढव है कि बिना ग्रीज के किसी सरकारी दफ्तर मे कोई फाइल एक मेज से दूसरी मेज तक नही सरक्ती।

मशीन चलानी है तो ग्रीज लगानी ही पडेगी।

हा, किस मशीन के लिए कितनी ग्रीज चाहिए, यह आप पूछ सकते हैं। पर इसका हिसाव आज तक कायदे-कानून की किसी किताव मे नही लिखा है।

परोपकार के काम तो सदा श्रद्धा के बल पर चलते हैं। श्री नासिर व्यापारियो का अहर्निश हित-साधन करत है। अव यह उस व्यापारी की श्रद्धा पर निर्भर है, जिसका काम रुका पडा था, कि वह अपना काम बनवाने के लिए कितना खर्च कर सकता है। उस खर्च की गिनती गणित के अको म नही होती, श्रद्धा के अका म होती है।

श्री नासिर मे परोपकार की यह सामर्थ्य कहा से आ गई ?

श्री नासिर वगबन्धु के रिश्तेदार है, उनके कृपापात्र हैं, इसलिए उनकी भृकुटी के इशारे पर क्या नही हो सकता !

चौथी अफवाह

आइए, इनसे मिलिए। आप हैं श्री गाजी मुस्तफा कमाल।

आपकी तारीफ ?

तारीफ यही है कि आप वगला देश के रेडक्रास के अध्यक्ष हैं।

हा, हा, रेडक्रास का नाम कौन नही जानता ! यह तो ससारव्यापी सगठन है । जहा कही अकाल, बाढ, भूकम्प, महामारी हो, या युद्ध मे हताहतो की व्यवस्था का प्रश्न हो, अबोध शिशुओ के कुपोषण की समस्या हो, विस्थापित और अभागे नर-नारियो के निवास और जीवन-धारण करने की परेशानी हो,—उन सभी समस्याओ को निपटाने मे सहायता के लिए रेडक्रास वाले हमेशा तैयार रहते हैं । इससे बढकर परोपकारी सस्था ससार मे और कौन-सी है ?

आप ठीक कहते हैं । रेडक्रास के इसी गुण और ख्याति के कारण ससार-भर के लोग इस सस्था के लिए अपना धन लुटाते हैं, नाना प्रकार की सामग्री भेजते हैं । इस सामग्री मे शामिल हैं—दवाइया, दुग्धचूर्ण, कम्बल, तम्बू, अनाज, कपड़े और वे सभी पदार्थ जो विपद्ग्रस्त मानवता के काम आ सकते हैं ।

इस समय सारे ससार मे बगला देश से बढकर विपद्ग्रस्त देश और कौन-सा होगा ?

इसलिए सारे ससार की दया-माया उमडी पडी है बगला देश की ओर और सब लोग 'कैश' और 'काइण्ड' दोनो से बगला देश की यथासम्भव सहायता करना चाहते हैं । धन भी आ रहा है, सामग्री भी आ रही है ।

इसी सस्था के अध्यक्ष हैं श्री गाजी मुस्तफा कमाल ।

कितनी बडी जिम्मेदारी है इनकी !

कैसा कोमल और दयालु हृदय पाया होगा इन्होने !

उनके दर्शनमात्र से ही जन्म-जन्मान्तर के पाप कट जाते होगे !

हा, इनको भी बगबन्धु ने खुली छूट दे रखी है—जितना चाहे परोपकार करें ।

बस, इन्हे केवल इस बात का ध्यान रखना पडता है कि बगबन्धु को बगला देश मे जनतत्र की गाडी को चालू रखने के लिए और अवामी लीग के कार्यकर्ताओ को सन्तुष्ट रखने के लिए जब जितने धन की आवश्यकता हो, ये तुरन्त भेज दें ।

धन कहा से आता है ?

'सिमिट-सिमिट जल भरहि तलावा ।' सारे ससार से जो धन बट-

बहकर रेडक्रास के तालाब मे इकट्ठा होता रहता है, वही काम मे आता है। और अगर 'कैश' न हो, तो इतनी सामग्री जो विपद्ग्रस्तो को मुफ्त बाटने के लिए आई पडी है—उस बाजार मे किसी भी कीमत पर बेचा जा सकता है। सब आयातित माल है, इसलिए उसकी कीमत भी अच्छी उठ सकती है।

बिना बगबन्धु के आशीर्वाद के गाजी मुस्तफा न इतनी बडी जिम्मेदारी सभाल सकते है, न इतना परोपकार कर सकते है। फिर व बगबन्धु के प्रति कृतज्ञ क्यो न हो!

इसी कृतज्ञता प्रकाशन के लिए गाजी मुस्तफा सारे ससार की यात्रा कर आए हैं, इगलैंड म बगबन्धु के लिए एक आलीशान मकान खरीदकर रख आए हैं और स्विस बैंको मे बगबन्धु के निजी नाम से ढाई करोड रुपय की विदेशी मुद्रा जमा करवा आए है।

पांचवीं अफवाह

शफीकुर्रहमान नामक एक युवक। देशभक्ति की ज्वाला से दीप्त। बगला देश की मुक्ति का सघर्ष हुआ तो वह मुक्तिवाहिनी मे शामिल हो गया। मुक्ति-सग्राम मे अपने शौर्य और लगन से उसने खूब यश अर्जित किया।

जब बगला देश पाकिस्तानी पजे से मुक्त हो गया, तब भी देश-सेवा की उसकी तडप बरकरार रही। इसलिए सना म भर्ती हो गया। वहा वह मजर के पद तक पहुचा।

जब देश मे तस्करी का धन्धा आर पकड गया, तब शफीकुरहमान को कोमिल्ला के क्षेत्र मे तस्कर विरोधी अभियान का सचालन करने का अवसर मिला। वहा भी उस खूब सफलता मिली। उसकी लोकप्रियता और यश और बढा।

पर तस्करी का बडे पैमाने पर कोई भी काम तब तक सफल नही हो सकता, जब तक सम्बद्ध सरकारी अफसर और राजनना प्रच्छन्न रूप स उनम शामिल न हो। तस्कर विरोधी अभियान म सफलता का अर्थ है उन राजनेताओ की नाराजगी मोल लेना जिनके आशीवाद स वह असीम लाभ-

हा, हा, रेडक्रास का नाम कौन नही जानता ! यह तो स
है। जहा कही अकाल, बाढ, भूकम्प, महामारी हो, या ग
व्यवस्था का प्रश्न हो, अबोध शिशुओ के कुपोषण की सम
और अभाग नर-नारियो के निवास और जीवन धारण
हो,—उन सभी समस्याओ को निपटाने मे सहायता दे f
हमेशा तैयार रहते हैं। इससे बढकर परोपकारी सस्था
सी है ?

आप ठीक कहते हैं। रेडक्रास के इसी गुण और व्य
भर के लोग इस सस्था के लिए अपना धन लुटाते हैं, ना
भेजते हैं। इस सामग्री मे शामिल हैं—दवाइया, दुग्
अनाज, कपडे और वे सभी पदार्थ जो विपद्ग्रस्त ग
सकते हैं।

इस समय सारे ससार मे बगला देश से बढक
कौन-सा होगा ?

इसलिए सारे ससार की दया माया उमडी पडी
और सब लोग 'कैश' और 'काइण्ड' दोनो से बग
सहायता करना चाहते हैं। धन भी आ रहा है, सा

इसी सस्था के अध्यक्ष हैं श्री गाज़ी मुस्तफा व
कितनी बडी ज़िम्मेदारी है इनकी !
कैसा कोमल और दयालु हृदय पाया होगा
उनके दर्शनमात्र से ही जन्म-जन्मान्तर के प
हा, इनको भी बगबन्धु ने खुली छूट दे रखी
करें।

बस इन्हे केवल इस बात का ध्यान रर
बगला देश मे जनतत्र की गाडी को चालू रखन
के कार्यकर्ताओ को सन्तुष्ट रखने के लिए जब
हो, ये तुरन्त भेज दें।

धन कहा से आता है ?
सिमिट सिमिट जल भरहिं तलावा।

उनका सबसे बडा गुण—जिसे कुछ लोग दुर्गुण कहना पसद करते—यह था कि वे कट्टर भारत-समर्थक और रूस-पक्षपाती थे, क्योकि उन्हे इसी नीति में बगला देश का उद्धार दिखाई देता था।

जब आपातकालीन स्थिति घोषित करने के बाद भी देश में हालात सुधरते नजर नही आए और अराजकता तथा महगाई ज्यो की ज्यो विद्यमान रही, तब एक दिन बगबन्धु ने मन्त्रिमण्डल में यह प्रस्ताव रखा कि जातीय ससद (पार्लियामेट) को भग कर दिया जाए और प्रशासन के सारे अधिकार राष्ट्रपति के रूप में बगबन्धु स्वय सभाल लें, तो इससे जनतत्रीय प्रणाली के आवश्यक तकाजो के कारण प्रशासन मे जो अवरोध और शिथिलता उपस्थित होती है, वह दूर हो जाएगी और कानूनो को क्रियान्वित करने में तेजी आ सकेगी।

मन्त्रिमण्डल के अन्य सब साथी चुप रहे। बगबन्धु के सामने कौन मुह खोले। पर देश में दूरगामी परिणाम उपस्थित करने वाली और जनतन्त्र को समाप्त कर तानाशाही का मार्ग प्रशस्त करने वाली इस प्रक्रिया से ताजुद्दीन सहमत नही हो सके।

उन्होने बगबन्धु से कहा—'ऐसा कौन-सा काम है जो आप स्वय राष्ट्रपति बनकर ही कर सकते हैं और प्रधान मत्री बने रहकर नही कर सकते? रही बात पार्लियामेंट की। उसमें आपके दल का इतना अधिक बहुमत है कि आप जो कानून चाहे, पास करवा सकते हैं। जनता की श्रद्धा भी आपके प्रति असीम है। सारा मन्त्रिमण्डल आपका अनुगत है। इस समय देश में अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नही जो आपका प्रतिद्वन्द्वी हो। प्रतिद्वन्द्वी की बात छोड अन्य कोई नेता आपके पासग भी नही ठहरता। फिर आपको चिन्ता किस बात की है। आप सारे अधिकार अपने हाथ में लेकर क्या जनता के मन में यह भावना नही पैदा करेंगे कि आप डिक्टेटर बनना चाहते हैं? यह युग डिक्टेटरशिप का नही, जनता को अपने साथ लेकर चलाने का है। डिक्टेटरो के स्वप्न कभी पूरे नही होते, इसके उदाहरणो से इतिहास भरा पडा है। इसलिए आप इस प्रकार की बात सोचते ही क्यो हैं?"

उस समय बगबन्धु ने इस बात को निरुत्तरित ही रहने दिया। पर अगले दिन सवेरे ही ताजुद्दीन मन्त्रिमण्डल से निकाल दिए गए।

दायक धन्धा दिन-दहाडे चलता है।

तभी एक छोटी-सी घटना घट गई। स्वरूप मे छोटी, पर परिणाम मे बडी।

एक शादी के समारोह मे बडे-बडे लोग शामिल हुए। मेजर शफीकुर्रहमान भी समारोह मे थे।

एक प्रमुख नेता के पुत्र ने एक लडकी को छेड दिया। शफीकुर्रहमान का तरुण और आदर्शवादी मन इसे सहन न कर सका। उसने उस युवक को डाट दिया।

पर युवक के दिमाग मे तो अपने बाप के पद की गरिमा—जिसे गर्मी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा—भरी थी। उसने भी अपने साथी इकट्ठे कर लिए।

गाजी मुस्तफा कमाल भी वही थे। उन्होने शैतानी करने वाले युवक का साथ दिया, क्योकि वह उन्हीका सुपुत्र था।

बात बढ चली। आपस मे हाथापाई की नौबत आ गई। कहते है कि गोलियो का आदान-प्रदान भी हुआ। पर किसीके हताहत होने का कोई प्रमाण नही।

शिकायत पहुची बगबन्धु के दरबार मे। वहा भी गाजी मुस्तफा कमाल हाजिर। शफीकुर्रहमान को प्रधान मत्री के निवास पर बुलाकर माफी मागने को कहा गया। जब उसने माफी मागने से इन्कार कर दिया, तब कहा जाता है कि उसे जलील किया गया और खासी पिटाई भी हुई।

इसके बाद शफीकुर्रहमान को सेना से निष्कासित कर दिया गया। यही शफीकुर्रहमान मेजर दलीम के नाम से विख्यात हुआ जिसने बगला देश की तीसरी क्रान्ति मे प्रमुख पार्ट अदा किया। पर उसकी कथा बाद मे।

छठी अफवाह

बगबन्धु के मन्त्रिमण्डल में वित्त मत्री थे—ताजुद्दीन अहमद। यह वही ताजुद्दीन थे जो मुक्ति-सग्राम के दिनो में बनी बगला देश की अस्थायी सरकार के प्रधान मत्री थे, मुक्तिवाहिनी के सचालक थे, और अपनी योग्यता, सरपन तथा ईमानदारी के लिए विख्यात थे।

उनका सबसे बडा गुण—जिसे कुछ लोग दुर्गुण कहना पसद करते—यह था कि वे कट्टर भारत-समर्थक और रूस-पक्षपाती थे, क्योकि उन्हे इसी नीति में बगला देश का उद्धार दिखाई देता था।

जब आपातकालीन स्थिति घोषित करने के बाद भी देश में हालात सुधरते नजर नही आए और अराजकता तथा महगाई ज्यो की त्यो विद्यमान रही, तब एक दिन बगबन्धु ने मत्रिमण्डल में यह प्रस्ताव रखा कि जातीय ससद (पार्लियामेंट) को भग कर दिया जाए और प्रशासन के सारे अधिकार राष्ट्रपति के रूप में बगबन्धु स्वय सभाल लें, तो इससे जनतत्रीय प्रणाली के आवश्यक तकाजो के कारण प्रशासन में जो अवरोध और शिथिलता उपस्थित होती है, वह दूर हो जाएगी और कानूनो को क्रियान्वित करने में तेजी आ सकेगी।

मत्रिमण्डल के अन्य सब साथी चुप रहे। बगबन्धु के सामने कौन मुह खोले। पर देश में दूरगामी परिणाम उपस्थित करने वाली और जनतत्र को समाप्त कर तानाशाही का मार्ग प्रशस्त करने वाली इस प्रक्रिया से ताजुद्दीन सहमत नही हो सके।

उन्होने बगबन्धु से कहा—'ऐसा कौन-सा काम है जो आप स्वय राष्ट्र-पति बनकर ही कर सकते हैं और प्रधान मत्री बने रहकर नही कर सकते? रही बात पार्लियामट की। उसमे आपके दल का इतना अधिक बहुमत है कि आप जो कानून चाहे, पास करवा सकते हैं। जनता की श्रद्धा भी आपके प्रति असीम है। सारा मत्रिमण्डल आपका अनुगत है। इस समय देश में अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नही जो आपका प्रतिद्वन्द्वी हो। प्रतिद्वन्द्वी की बात छोड अन्य कोई नेता आपके पासग भी नही ठहरता। फिर आपको चिन्ता किस बात की है। आप सारे अधिकार अपने हाथ में लेकर क्या जनता के मन में यह भावना नही पैदा करेंगे कि आप डिक्टेटर बनना चाहते हैं? यह युग डिक्टे-टरशिप का नही, जनता को अपने साथ लेकर चलाने का है। डिक्टेटरो के स्वप्न कभी पूरे नही होत, इसके उदाहरणो से इतिहास भरा पडा है। इसलिए आप इस प्रकार की बात सोचते ही क्यो हैं?"

उस समय बगबन्धु ने इस बात को निरुत्तरित ही रहने दिया। पर अगले दिन सवेरे ही ताजुद्दीन मत्रिमण्डल से निकाल दिए गए।

इस घटना पर भारत के एक पत्रकार ने कहा था कि ताजुद्दीन के हट जाने से भारत और बगला देश के बीच का पुल टूट गया।

मैंने ऊपर जिन अफवाहो का उल्लेख किया है, वे मैंने अपनी बगला देश की यात्रा के समय सुनी थी। उनपर मैं भी उस समय पूरी तरह विश्वास नही कर सका था।

जानता हूँ कि जब इमर्जेंसी के समय जनता की अभिव्यक्ति की स्वतत्रता छीन ली जाती है, तब इस प्रकार की अफवाहे कानो-कान फैलती रहती हैं। न इन अफवाहो की कही पुष्टि होती है, न खण्डन। पर ज्यो-ज्यो ये फैलती हैं, त्यो-त्यो एक कान से दूसरे कान तक पहुचते-पहुचते उनमें कुछ न कुछ नमक मिर्च और मिल जाता है।

पर अफवाहे क्या बिल्कुल निराधार होती हैं ?

यही यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि क्या उपन्यास और महाकाव्य निरे काल्पनिक होते है, उनका कोई ऐतिहासिक आधार नही होता ?

तब दर्शनशास्त्री और मनोविज्ञानवेत्ता बीच में कूद पडेंगे और कहगे कि नही न उपन्यास काल्पनिक होते है, न महाकाव्य। उपन्यासो में केवल नाम काल्पनिक हो सकते हैं, घटनाक्रम नही। महाकाव्यो में और इतिहास में नाम यथार्थ हो सकते हैं, पर घटनाक्रम वहा भी सर्वथा विवादास्पद रहेगा। वास्तविकता यह कि मनुष्य की कल्पना भी कभी निराधार नही होती। जिन लोगो ने कभी आकाश में पछी को उडता देखकर आकाश में मनुष्य के उडने की कल्पना की थी, वह कल्पना आज के युग में सार्थक हो गई न। जिन लोगो ने मनुष्य द्वारा चन्द्रलोक की यात्रा की कल्पना की थी, क्या आज वह सत्य सिद्ध नही हो गई ? इक्कीसवी और बाईसवी सदी के ससार की कल्पना जिन वैज्ञानिको ने की है, क्या उनकी कल्पना के साकार होने के प्रमाण अभी से मिलने शुरू नही हो गए है ?

पर अफवाह न उपन्यास है, न महाकाव्य, न इतिहास।

या सब कुछ है। क्योकि वह सर्वथा निराधार नही होती। अलबत्ता इतना अवश्य है कि अफवाहो में जनता की कल्पना प्रवणता और सृजनशीलता का साक्षात्कार होता है। अफवाह और जनश्रुतिया क्या हैं—ये

जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता के उपन्यास हैं महाकाव्य हैं और इतिहास हैं।

अफवाह को आप अफवाह इसीलिए कहते हैं न कि वे किसी पुस्तक या समाचारपत्र में प्रकाशित नहीं हुई। केवल जनता की ज़बान और जनता के कान ही उसके सबसे बड़े उत्पादन-संयत्र होते हैं।

बाद के घटनाक्रम से यह सिद्ध हो गया कि उक्त अफवाहों में से कोई भी सर्वथा गलत नहीं थी।

पिछले तीस सालों से भारत महादेश के इस पूर्वतन भाग के रंगमंच पर जो नाटक चल रहा है उसमें नान्दीपाठ और सूत्रधार से लेकर नायक तथा प्रतिनायक तक की सभी भूमिकाओं में जिस व्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण रोल रहा है वह व्यक्ति है करीमपुर ज़िले के टांगीपाड़ा में ७ मार्च, १६२० को जन्म लेने वाला शेख मुजीब।

किशोरावस्था में ही उसमें राजनैतिक चेतना जागृत हो गई थी। शहीद सुहरावर्दी को अपना राजनीतिक गुरु मानकर उसने मुस्लिम लीग के एक उत्साही स्वयंसेवक के रूप में अपनी राजनीतिक गतिविधियां प्रारम्भ की थीं। विचारों में सर्वथा परिवर्तन हो जाने पर भी मुजीब अपने राजनीतिक गुरु को भूले नहीं थे और उसकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए इन्होंने बंगला देश की बागडोर अपने हाथ में आते ही रेसकोर्स मैदान (रमण पार्क) का नाम सुहरावर्दी पार्क रख दिया था।

हुसैन शहीद सुहरावर्दी का नाम सामने आते ही भारतीय राजनीति का ऐसा कौन सा विद्यार्थी है जो कलकत्ता के हत्याकाण्ड को भूल जाए?

सन ४६ की बात है। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस शासन के विरोध में 'सीधी कारवाई' (डायरेक्ट ऐक्शन) दिवस मनाया था। इस दिवस के उपलक्ष्य में मुस्लिम लीगी गुण्डों ने कलकत्ता में हिंसा और घृणा का नग्न ताण्डव प्रारम्भ कर दिया। पर लातों के भूत बातों से नहीं मानते। इसलिए विरोधी शक्तियां भी तुरन्त सचेत हो गईं और मुस्लिम लीगियों को उसी ज़बान में जवाब मिलने लगा जिसे वे समझ सकते थे। उन्हें लगा कि अपनी साम्प्रदायिक विध्वंसक शक्ति के प्रदर्शन के लिए कलकत्ता का चुनाव सही नहीं है। वह शक्ति प्रदर्शन तो उस स्थान पर होना चाहिए जहां मुसलमानों

का अत्यधिक बहुमत हो ।

तब उन्हे नोआखाली का ध्यान आया।

नोआखाली की अपनी कुछ विशेषताए थी। चटगाव डिवीजन के इस प्रदेश मे मुसलमानो की आबादी ८१ प्रतिशत थी और हिन्दुओ की केवल १९ प्रतिशत। फिर भी प्रदेश की ६४ प्रतिशत भूमि हिन्दुओ के पास थी। इसलिए उनके विरोध मे भूमिहीनो और कम भूमिवालो को आसानी से भड़काया जा सकता था। धार्मिक कट्टरता इस प्रदेश मे इतनी अधिक थी कि देवबन्द और आज़मगढ के उन मदरसो मे, जहा शुरू से ही अरबी पढाकर धर्मान्ध मौलवी तैयार किए जाते हैं, इस प्रदेश के मौलवी प्रशिक्षण पाने के लिए अच्छी सख्या मे जाया करते थे। नोआखाली के मौलवी बम्बई और मद्रास तक की मस्जिदो मे इमाम बनते थे।

मुस्लिम आबादी की सघनता का यह हाल था कि चटगाव से चादपुर तक १०० मील के इलाके मे 'अल्लाहो अकबर' के नारो की शृ खला चलाई गई थी—एक आदमी नारा बोलकर खत्म करता कि तुरन्त कुछ दूरी पर स्थित दूसरा आदमी वही नारा लगाता, फिर तीसरा, फिर चौथा—और इस प्रकार इस सौ मील के प्रदेश के कण-कण को 'अल्लाहो अकबर' के नारे से शब्दश और अक्षरश गुजा दिया जाता।

मुस्लिम लीग ने इस प्रदेश को क्या चुना—इसका एक कारण और भी था। कभी १९२०-२१ के स्वातन्त्र्य-सघर्ष के दिनो मे यहा के मुसलमानो ने खिलाफत आन्दोलन मे हिस्सा लिया था और बाद मे काग्रेस का साथ देकर उन्होने दो रायबहादुरो और एक खानबहादुर को हरा दिया था। पर १९४६ आते-आते समय बदल चुका था। अब मुस्लिम-बहुल इलाको मे सर्वत्र मुस्लिम लीग जड जमा चुकी थी और अग्रेजो ने राजनैतिक त्रिभुज की सबसे बडी भुजा काग्रेस को हटाने के लिए दूसरी भुजा मुस्लिम लीग को अपने साथ मिला लिया था। और इस प्रकार दो भुजाए मिलकर तीसरी भुजा को पछाडना चाहती थी। उस समय अग्रेज अफसर साफ-साफ कहते थे—"तुम हिन्दू लोग क्रान्तिकारी के रूप मे बम और गोली का इस्तेमाल करके, तथा सत्याग्रही के रूप में सत्य और अहिंसा की आड में सत्याग्रह करके, अग्रेजो को इस देश से खदेडना चाहते हो, इसीलिए हमने

मुस्लिम लीग को साथ लिया है। यदि तुम हमारा साथ दो तो हम मुस्लिम लीग का दामन छोड सकते हैं।"

कलकत्ता में 'डायरेक्ट ऐक्शन' की विफलता की खीझ नोआखाली में मिटाई गई। वहा १० अक्तूबर, ४६ को कत्लेआम शुरू हुआ। पुल तोड दिए गए, नहरें तोड दी गईं, सडकें काट दी गईं और डाक-तार-टेलिफोन आदि सचार-सम्बन्ध सब इस तरह भग कर दिए गए कि लगातार सात दिन तक यह प्रदेश देश के शेष भाग से विच्छिन्न रहा और ससार जान ही नही पाया कि वहा क्या हुआ या वहा क्या गुल खिल रहा है। मुस्लिम लीग को खुलकर खेलने का मौका देने के लिए चटगाव डिवीजन का कमिश्नर तथा अन्य अग्रेज अफसर वहा से भाग गए। सारा प्रदेश इतने घने वनो से आच्छादित है कि दिन में भी वहा शोर मचाओ तो सुनाई न दे। रास्तो पर पहरा बिठा दिया गया कि कही से कोई सहायता पहुचने न पावे।

किस प्रकार हिन्दुओ का वलात् धर्म-परिवर्तन किया गया, मन्दिरो को भ्रष्ट किया गया, जबदस्ती गोमास खिलाया गया पतियो के सामने पत्नियो का और मा वाप के सामने वेटियो का शील हरण किया गया, कन्याओ का अपहरण किया गया, निर्भय होकर लूटा गया—यह सब ऐसी व्यथा-कथा है कि लिखत भी कलम कापती है।

कहते हैं, उन सात दिनो में वहा पाच हजार आदमी मारे गए। चालीस हजार व्यक्ति शरणार्थी वनकर सीमा के साथ ही लगे तिपरा (त्रिपुरा) मे पहुचे और १२०० शरणार्थी रोज कलकत्ता पहुचने लगे। यह समझ लीजिए कि सन् १९७१ में पाकिस्तानी दरिन्दो ने जिस प्रकार की पाशविकता का पूर्वी पाकिस्तान में प्रदर्शन किया, नोआखाली में जैसे उसका पूर्व रिहर्सल हो रहा था। अन्तर इतना ही है कि एक घटना पाकिस्तान वनने के बाद की है और दूसरी पाकिस्तान वनने से ऐन पहले की।

बल्कि या कहा जा सकता है कि नोआखाली काण्ड की नृशसता और उसको दवाने में अपनी कदय असमथता ने ही भारतीय नेताओ को देश का विभाजन स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। नोआखाली काण्ड न हुआ होता, तो कदाचित् पाकिस्तान भी न बनता।

इस काण्ड में जहा तक अग्रेज अधिकारियो और मुस्लिम लीगी नेताओ

का हाथ था, वही हसन शहीद सुहरावर्दी और उनके सिपहसालारो का कम हाथ नही था। बगाल विधानसभा के विधायक गुलाम सरवर हुसेन ने नोआखाली जाकर अपने उत्तेजक भाषणो से जनता को भडकाया था। उनके नाम वारट भी जारी हुआ। पर उन्हे गिरफ्तार नही किया गया। और अन्तरिम सरकार के मुख्यमत्री के नाते हसन शहीद सुहरावर्दी ने इस कत्ले आम के पूरे एक सप्ताह बाद वक्तव्य देकर इन सब ज्यादतियो को तसलीम तो किया, पर उपद्रवो के दमन के लिए न तो सेना भेजी, न खुद नोआखाली का दौरा करना मजूर किया। बल्कि वक्तव्य देकर वे अपने दिलो दिमाग की तपिश बुझाने दार्जिलिंग चले गए, जहा अग्रेज गवर्नर पहले से ही आराम फरमा रहा था।

रोम जल रहा था और नीरो बसरी बजा रहा था—इसका इससे बढ कर उदाहरण और कहा मिलेगा ?

नोआखाली काण्ड में सबसे अधिक अत्याचार और अनाचार जिस प्रदेश मे हुआ वह वही करीमपुर जिला था जिसे शेख मुजीब को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

इस सारे काण्ड मे सुयोग्य गुरु के सुयोग्य चेले का भी कुछ हाथ था या नही, यह कह सकना सभव नही है। पर इतना सप्रमाण कहा जा सकता है कि शेख मुजीब उस समय कलकत्ता के इस्लामिया कालेज मे अन्तिम वर्ष के विद्यार्थी थे और अपनी छात्रावस्था मे ही वे मुस्लिम लीग की कौंसिल के मेम्बर और अपने राजनीतिक गुरु के विश्वासभाजन बन चुके थे। यह भी सप्रमाण कहा जा सकता है कि १९४७ के जनमत (रिफरेण्डम) मे शेख मुजीब ने सिलहट की जनता को अपने तूफानी आन्दोलन से इस बात के लिए तैयार किया था कि वह भारत के बजाय पाकिस्तान के पक्ष मे अपनी राय दे।

राजनीतिक जनो के जीवन मे इस प्रकार के क्षण आते रहते हैं। कभी वे हिमालय के शिखर पर होते हैं और कभी भू-स्खलन के शिकार होकर गहरी खाई मे। बगला देश मे नाटक के नायक के जीवन की रगीनी इन्हीं विपरीत घटनाओ मे से निखरती है। कभी कायदे-आजम मुहम्मद अली जिन्ना भी तो कट्टर काग्रेसी और राष्ट्रवादी थे, तो कभी शेख मुजीब भी कट्टर मुस्लिम लीगी थे। पर बाद मे दोनो ने अपने स्थान आपस म बदल

लिये।

ईस्ट इडिया कम्पनी के शासन-काल मे 'ब्लैक-होल' के नाम से अग्रेज इतिहासकारो ने भारतीयो को वदनाम करने के लिए सर्वथा मनघडन्त एक घटना गढी थी। जब नेता जी सुभाष बोस ने उसके विरुद्ध सत्याग्रह किया, तब शेख मुजीब भी उसमे शामिल हुए थे। शेख पर तव मुस्लिम लीग का रग इतना गहरा था कि राष्ट्रीयता का यह रग अधिक दिन नही टिक सका और इस आन्दोलन के वाद वे फिर मुस्लिम लीग के काम मे जुट गए।

१९४७ मे, आखिर, पाकिस्तान बन गया और उसका एक भाग पूर्वी पाकिस्तान और दूसरा पश्चिमी पाकिस्तान कहलाया।

पर पाकिस्तान बने एक साल भी नही गुज़रा था कि पाकिस्तान का जादू टूटने लगा।

शेख ने देख लिया कि जिस पाकिस्तान के लिए मैंने जी-जान लगाया, वह पाकिस्तान केवल उर्दूभाषी पश्चिमी पाकिस्तानियो द्वारा सियासत और हकूमत मे अपना हाकिमाना रौब बढाने की हिकमत और साजिश मात्र था। और जब मार्च, १९४८ मे कायदे आज़म ने यह घोषणा की कि उर्दू पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा है और जो कोई इसका विरोध करता है, वह पाकिस्तान का दुश्मन है, तो शेख का रहा-सहा मोह भी भग हो गया।

कायदे आज़म की उस सभा मे ही तरुण मुजीब ढाका विश्वविद्यालय के कुछ अन्य तेजस्वी छात्रो के साथ खडा हो गया और 'वगला भाषा अमर रहे' का नारा बुलन्द किया।

और उसके बाद शेख को कृष्ण मन्दिर की जो शरण मिली तो लगातार दस साल तक वह जेल के सीखचो से बाहर नही आ सका।

और जब जेल से छूटकर आया तो शेख ने नाटक मे साइड रोल करना छोडकर सीधे नायक की भूमिका अपना ली। पश्चिमी पाकिस्तान के आधिपत्य के विरुद्ध आन्दोलन मे उसने अपने-आपको झोक दिया। समस्त केन्द्रीय-विधान निर्मात्री (लेजिस्लेटिव) सस्थाओ मे उसने बगालियो के समान दर्जे की माग की और उसने अपने सब साथियो को मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकता से निकालकर राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर करना प्रारम्भ कर दिया।

अवामी मुस्लिम लीग का नाम भी बदलकर सिर्फ अवामी लीग रहने दिया गया ।

धीरे-धीरे शेख का राजनीतिक 'स्ट्रेचर' बढ़ना शुरू हुआ । सन् १९५४ मे वह प्रान्तीय विधान सभा के लिए निर्वाचित हुआ । एक साल बाद राष्ट्रीय विधान सभा (पाक पार्लियामेण्ट) के लिए निर्वाचित हुआ । 'शेरे बगाल' फजलुल हक के मन्त्रिमण्डल मे वह व्यापार मन्त्री बना और बाद मे, १९५७ मे उसने विभागो के वितरण मे मतभेद होने के कारण पाकिस्तान के केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे जाने से इकार कर दिया।

१९६२ मे उसने एक आन्दोलन चलाया जिसमे अयूबखा द्वारा लादे गए उस सविधान का विरोध किया जिसमे पूर्वी बगाल की जनता को बुनियादी अधिकारो से वचित रखा गया था । सन् १९६५ मे उसने पाकिस्तान के प्रेजिडेण्ट के चुनाव मे अयूब के मुकाबले मे कुमारी फातिमा जिन्ना का समर्थन किया । १९६५ मे भारत-पाक युद्ध के समय ही उसने पूर्वी बगाल की स्वायत्तता का आन्दोलन छेड दिया । उसका कहना था—"हमारी सरकार कश्मीर मे जनमत के लिए लड रही है । सरकार वही जनमत हमारे यहा भी तो कराकर देखे ।"

१९६६ मे उसने पूर्वी बगाल की स्वायत्तता के लिए अपना ६ सूत्री कार्यक्रम पेश किया और अवामी लीग ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जनता को तैयार करना प्रारम्भ कर दिया ।

१९६८ मे राजद्रोह का अभियोग लगाकर अगरतल्ला षड्यन्त्र काण्ड मे उसे फसाया गया । परन्तु उसमे पाकिस्तान सरकार को मुह की खानी पडी । उसके बाद शेख ने जो धुआधार आन्दोलन छेडा तो वह १९६९ मे अयूबखा को पदच्युत करके ही शान्त हुआ ।

१९७० के दिसम्बर के चुनावो म विजय मिलने पर जब याह्याखा ने जनता के प्रतिनिधियो को सत्ता सौंपने से इन्कार कर दिया, तभी स्वाधीन बगला देश के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया । याह्याखा के दरिन्दे पूर्वी बगाल पर टूट पडे । उसके पहले शेख मुजीब ने मार्च, ७१ मे नायकोचित अन्दाज से गुरु गभीर गर्जना के साथ कहा था—"उनके पास बन्दूकें है, तोपें है, सारे साधन है । वे मुझे मार सकते हैं । परन्तु उनको यह जान लेना चाहिए कि

वे बगाल की साढे सात करोड लोगो की भावना को नही कुचल सकते ।"

याह्या खा ने अपनी ओर से पूर्वी पाकिस्तान को कुचलने मे कसर नही छोडी । जिस वहशीपन के कारण पूर्वी बगाल के तीस लाख लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे और एक करोड लोग शरणार्थी बनाकर भारत की ओर धकेल दिए गए, उस वहशीपन की मिसाल दुनिया की तवारीख मे ढूढने से भी मिलनी मुश्किल है ।

पर दैवी विधान याह्या खा के अनुकूल नही था । वे डिक्टेटर से जेल के सीखचो मे पहुच गए और मुजीब फासी के तख्ते से राजसिंहासन के तख्त पर पहुच गए ।

अब मुजीब थे और उनके सामने अपना स्वप्न था—'सोनार बागला' कैसे बनाऊ । बीच मे कोई बाधा नही थी । भारत ने स्वाधीन बगला देश के उदय के पश्चात् कई मास तक इतनी अधिक सहायता की कि कितनी राशि और कितना सामान जा रहा है, इसका कोई हिसाब तक नही रखा गया । रूस ने भी सहायता मे कसर नही छोडी । धीरे-धीरे अमरीका भी सहायता की थैली लिए चला आया । अन्य देशो ने भी सहायता की ।

पर बगला देश तो ऐसा अन्धकूप साबित हुआ कि उसमे जितना भी डालो, सब गडप ।

थैलियो की डोरिया कस गई, पर भिक्षा की झोली ज्यो की त्यो फैली रही । रेडक्रास के नाम से तथा अन्य सस्थाओ की मार्फत विदेशो से आने वाली वह सब सहायता कहा गई ? उसका क्या उपयोग हुआ ?

कभी मुजीब ने निराशा के स्वर मे खुद ही कहा था—"मैं अपने देश-वासियो को सब कुछ दे सकता हू, पर चरित्र नही दे सकता ।"

जिस कवि ने कहा था—"यदि धन गया, तो कुछ नही गया । यदि स्वास्थ्य गया, तो बहुत कुछ गया । यदि चरित्र गया तो सब कुछ गया ।" उसका कहना गलत नही था ।

इतनी सहायता के बावजूद, बगला देश मे न अराजकता कम हुई, न महगाई कम हुई, न आम जनता के जीवन-स्तर मे सुधार हुआ । जितनी भी समृद्धि आई, वह चन्द लोगो के चरणो की चेरी बनकर रह गई । ज्यो-ज्यो विषमता की खाई बढती गई, त्यो-त्यो जन-असन्तोष भी बढता गया ।

जिस बंगला देश की स्तुति में रवीन्द्रनाथ के कण्ठ से स्वर फूटा था—"बांगलार माटी, बागलार जल, बांगलार वायु, बांगलार फल—पुण्य हउक, पुण्य हउक, पुण्य हउक।" और विश्वकवि ने जिसकी मिट्टी के लिए कहा था—"ओ आमार देशेर माटी, तोमार पर टेकाई माथा। सार्थक जन्म आमरा जन्मेछि एइ देशे"—उसी बागला देश की मिट्टी अब सोना उगलने के बजाय भूख, दैन्य, दारिद्र्य और असुरक्षा उगलने लगी।

भूख उगने का उदाहरण सुनना चाहते है?

जयन्त चोरी करते हुए पकड़ा गया। पुलिस ने उसे इतना मारा कि उसके प्राण निकल गए। शव-परीक्षा के लिए उसका शव अस्पताल में भेज दिया गया। डाक्टरों ने जांच करने के बाद बताया कि वह व्यक्ति एक मर्ज का शिकार था। उसी मर्ज के कारण उसने चोरी का अपराध किया था।

जयन्त को कौन-सा मर्ज था?

वह एक शारीरिक जरूरत थी। उस मर्ज का नाम था···भूख।

कई मास से जयन्त बेकार था। खूब दौड़-धूप करने पर भी उसे कहीं काम नहीं मिला। वह अपना या अपने परिवार का पेट कैसे भरता?

अन्त मे उसने एक तरकीब निकाली। वह गाव वालों के रसोईघर में से भात, माड और फेंकी हुई जूठन चुराने लगा। इस कला में वह माहिर हो गया। पर एक दिन आधी रात को वह एक ग्रामीण के घर मे से जूठन चुराता हुआ पकड़ा गया। ग्रामीण ने जयन्त को पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस वालों ने उसे इतना पीटा कि वह हवालात में ही मर गया।

अच्छा हुआ, अब वह कभी चोरी नही करेगा।

और 'बांगलार माटी' मे असुरक्षा उगने की बात?

साम्प्रदायिकता, अकाल और बाढ़ की विभीषिका से त्रस्त और असुरक्षा की भावना से ग्रस्त लोगों का प्रवाह फिर भारत की ओर उमड़ चला। भारतीय दूतावास में रोज लगभग १२०० व्यक्ति भारत के प्रवेश-पत्र के प्रार्थनापत्र देते। मैंने इन प्रार्थियों की लम्बी लाइन स्वयं अपनी आंखों से भारतीय दूतावास मे देखी है। क्या उनमे से कोई लौटकर बंगला देश आएगा?

यह तो हुआ वैध उपाय। अवैध उपायों से कितने लोग भारत की सीमा

में घुसपैठ करते, इसका कोई हिसाब नही। ब्रह्मपुत्र की घाटी अर्से से भूमिहीनों को आकर्षित करती रही है। अरुणाचल की उपत्यका में दराग जिले में कितने ही लोग गुपचुप जाकर बस गए। उत्तरी कछार, नदिया और चौबीस परगना भी बंगला देश से अवैध रूप से आव्रजन करने वालों के लिए आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। असम और त्रिपुरा मे रात्रि के अन्धकार में सीमा पार करके घुस आने वालों की संख्या भी कम नही रही है।

मौके की नजाकत समझने वाले कुछ भ्रष्ट अफसरों ने जहा बंगला देश में साम्प्रदायिक उत्तेजना पैदा करके अल्पसंख्यक सम्प्रदाय मे असुरक्षा की भावना पैदा की वहा यह भी प्रचारित किया कि इधर से जाने वाले लोगों के लिए भारत मे निःशुल्क लंगर खोले गए हैं। फिर यही भ्रष्ट अफसर भयभीत लोगों के हितैषी बनकर उनके पास जाते, उन्हे सुरक्षित सीमा पार पहुंचा देने की गारंटी देकर उनसे रुपया ऐंठते। सीमा पर पहुंचने पर इनका रहा-सहा माल-मता सीमा-पुलिस छीन लेती।

काफी अर्से तक भारत सरकार इस बात को नजरन्दाज करती रही। ४०० मील तक सभी दिशाओं में फैली सीमाओं पर निगरानी भी कहां तक रखी जाती। जब शरणार्थियों की संख्या बहुत बढने लगी तो भारत सरकार ने अपनी सीमा-सुरक्षा सेना (बोर्डर सिक्योरिटी फोर्स) को सावधान किया और सुरक्षा सेना ने इधर आने वाले लोगों को वापस बंगला देश की सीमा में धकेलना शुरू किया।

भारत की सीमा मे अवैध रूप से प्रविष्ट जिन लोगों को वापस बंगला देश जाने के लिए बाधित किया गया, उनसे अच्छी भेंट-पूजा वसूल किए बिना रक्षावाहिनी उन्हें बंगला देश मे भी नहीं घुसने देती क्योंकि उनके पास न कोई पारपत्र होता, न प्रवेश-पत्र। सन् १९७३ के प्रारंभिक दो महीनों मे लगभग २२,००० अवैध आव्रजकों को बंगला देश वापस भेजा गया।

फिर भी कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि महानगरों में इन अवैध आव्रजकों की संख्या बढ़ती चली गई। [illegible] कि उनके [illegible] समुद्र में एक बार घुस [illegible] में अवैध आव्रजकों का पता लगाना आसान नहीं होता।

उन लोगा पर क्या वीतती होगी जो तरह-तरह की रगीन आशाए मन मे लिए बगला देश छोडकर भारतभूमि म प्रवेश करत हागे और उसके बाद भारतमाता निर्ममतापूर्वक अपने इन 'भूतपूर्व बेटा' को वापस फिर उसी नरक मे धकेल देती होगी ?

इधर कुआ, उधर खाई।

न उधर जीवन रक्षा न इधर जीवन-रक्षा।

हताश निराश त्रस्त-पस्त व्यक्ति कहा जाए, क्या करें ?

बगला देश स समाचार आने लगे कि अनक बरोजगार लोग आत्महत्या कर रहे हैं।

जब कई नव विवाहित दम्पतियो ने भी, जिन्हाने ससार के समस्त सुखा को अपनी मुट्ठी म पाने के अरमाना के साथ विवाह किया था, निराश होकर ब-खुशी खुदकुशी करनी प्रारम्भ कर दी, तब जैसे इन्सानियत चीख उठी।

इसी आलम म बगबन्धु ने २८ दिसम्बर, १९७४ को बगला देश म आपातकालीन स्थिति घोषित की।

पर जब उससे भी स्थिति बकाबू रही तो बगबन्धु ने २५ जनवरी, १९७५ को पार्लियामट भग कर दी, सब राजनैतिक दल विघटित कर दिए, सब समाचारपत्रो (दो को छोडकर) का प्रकाशन बन्द कर दिया, न्याय-पालिका भग कर दी, स्वय राष्ट्रपति बन गए और प्रशासन के सारे सूत्र उन्होने अपने हाथ मे ले लिए।

नई राजनैतिक पार्टी का गठन हुआ—जिसका नाम रखा गया बगला देश कृषक श्रमिक अवामी लीग। ससदीय जनतत्र के स्थान पर इस प्रकार एकदलीय शासन बगला देश मे प्रारम्भ हो गया। जनतत्र की आत्मा—अभि-व्यक्ति के स्वातत्र्य—की हत्या कर दी गई।

केवल दो घटे के अन्दर-अन्दर जिस तेजी से यह सब काण्ड हो गया, बगबन्धु बगपिता बन गए, वह भी कम आश्चर्यजनक घटना नही है।

बगला देश के रगमच पर जो नाटक चल रहा था, उसके एकमात्र नायक थे मुजीब। बगबन्धु से बगपिता बन जाने के पश्चात् नाटक का सह-नायक या प्रतिनायक भी कोई नही रहा।

अब मच पर चारो ओर मुजीब ही मुजीब। नायक के सिवाय नाटक

में और कोई पात्र भी नहीं।

तब धीरोदात्त नायक की अदा से शेख मुजीब ने कहा था—"अपनी जनता को भिखारियों का राष्ट्र बन जाने से बचाने के लिए तथा अराजकता, और अनुशासनहीनता के समूल उच्छेदन के लिए मैंने यह दूसरी क्रान्ति की है।"

पहली क्रान्ति थी—पाकिस्तान के पंजे से मुक्ति के लिए। अब यह दूसरी क्रान्ति थी अराजकता से मुक्ति के लिए।

सन् ४६ से मुजीब जिस क्रान्ति की तैयारी कर रहे थे, वह १९७५ में आकर पूरी हुई।

बंगला देश का गत ३० वर्ष का इतिहास मुजीब से मुजीब तक का इतिहास है।

पर मुजीब के इस ऐतिहासिक नाटक का और नाटकीय इतिहास का इतनी जल्दी अन्तिम दृश्य उपस्थित हो जाएगा, यह किसीको कल्पना नहीं थी !

११
पटाक्षेप

मकर सक्रान्ति के दिन जब मैं बगला देश के चक्रव्यूह से निकलकर आया था तब रगमच पर नाटक की दृश्यावली चल रही थी।

सात महीने का डैश।

१५ अगस्त, सन् १९७५

सारा भारत स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य मे हर्षोन्मत्त।

भारत ही क्यो, जहा-जहा भी कोई भारतीय रहता है, वह अग्रेजो की दो सौ वर्षों की गुलामी से मुक्ति के प्रतीक इस दिन को किसी पर्व स कम नही समझता। इस दिन का सूर्योदय जैसे प्रत्येक भारतीय के लिए एक नया जीवन-सदेश लेकर आता है।

पर बगला देश म उस दिन का सूर्योदय जीवन का नही, मृत्यु का सदेश लेकर आया था।

आधी रात।

नेपथ्य म हलचल।

सारा बगला देश निद्रामग्न।

छावनी से कुछ टैंक निकले और उन्होने बगबन्धु के धानमण्डी स्थित निवास स्थान (रोड न० ३२) को जाकर घेर लिया। साथ ही घेर *लिया* बगभवन (राष्ट्रपति-निवास) और रेडियो स्टेशन को भी।

बगबन्धु के चौकीदार और पहरेदार चौकन्ने हुए।

जीप से कुछ सैनिक अफसर निकले। उनके हाथो म आटोमैटिक रिवाल्वरें। आगे आगे वही कप्तान—जिसकी गारद के सैनिक पिछले सप्ताह ही अन्य पहरेदारो को हटाकर वहा नियुक्त किए गए थे।

गारद ने अपने कप्तान को देखत ही सलामी दी।

पर यह क्या ? कप्तान तो जैसे किसी और ही मूड मे है। वे अन्दर घुसते ही चले आ रहे हैं। उनके साथी सैनिक भी।

पहरेदारो को अपना कर्तव्य ध्यान आया। उन्होने रोका।

जिस-जिसने बाधा डाली, वही गोली का शिकार।

पाच पहरेदारो की लाशें जब जमीन पर बिछ गईं, तब अन्य पहरेदारो ने बाधा डालना बेकार समझकर आत्मसमर्पण कर दिया।

इस हलचल से मुजीब परिवार के सब लोग जाग गए।

आखें मलते-मलते उन्होने वक्त की नजाकत को समझने का प्रयत्न किया।

शेख कमाल अपनी पत्नी सुल्ताना अहमद के साथ इसी वर्ष ढाका विश्वविद्यालय से समाजविज्ञान मे एम० ए० की परीक्षा देने वाला था, और शेख जमाल, सैण्डहर्स्ट (ब्रिटेन) से ग्रेजुएट होकर हाल मे ही ढाका आया था। बगबन्धु के ये दोनो जवान बेटे—कमाल और जमाल भी—जागे।

उन्होने हमलावरो पर गोली चलाई। पर हमलावरो की गोली से कमाल और जमाल देखते-देखते ढेर हो गए।

बगबन्धु ने सेना के प्रधान कार्यालय मे फोन किया, पर वहा से कुछ भी सहायता कर सकने मे असमर्थता व्यक्त की गई।

तब बगबन्धु ने गुप्तचर विभाग के मुखिया सलीम को फोन किया। कुछ दिन पहले ही कर्नल रऊफ को हटाकर सलीम को यह पद दिया गया था, क्योकि रऊफ पाकिस्तान का पक्षपाती था।

सलीम दौडा-दौडा आया।

बगबन्धु के निवास-स्थान पर पहुचते ही मारा गया।

तब बगबन्धु, जो अब बगपिता भी थे—जीने से उतरकर नीचे की तरफ आते हुए बोले—"तुम सब मुझे क्यो मारना चाहते हो ? तुम तो मेरे बच्चो के बराबर हो ?"

पर बगपिता की यह कातर वाणी किसीके कान मे पहुचने से पहले ही 'बच्चो' की गोली 'पिता' के सीने पर पहुच गई, और वे वही जीने पर लुढक गए।

इसके बाद हमलावर अपनी खून की प्यासी आटोमैटिक रिवाल्वर लिए हुए शयनागार की ओर लपके। वहा बेगम मुजीब (जिसका नाम था—फाजिलातुन्निसा, पर जो मुक्तिवाहिनी के सघर्ष के दिनो मे तारा भाभी के

नाम से भी विख्यात रही) और उनकी दोनो सद्योविवाहिता पुत्रवधुए (कमाल और जमाल की पत्निया) शयनागार मे ही गोली की शिकार हुई।

साथ के कमरे मे शेख मुजीब के भाई थे नासिर—वे भी अपनी बेगम के साथ मारे गए।

शेख मुजीब का सबसे छोटा लडका था—रसेल, जिसका नामकरण बर्ट्रेण्ड रसेल के नाम के आधार पर किया गया था—वह अभी ६ साल का बच्चा ही था। रसेल उठकर बाथरूम की तरफ भागा। पर हमलावरो के कोप का शिकार होने से नही बच सका।

बगपिता के पिता, शेख मुजीब के अब्बा जान, कुछ दिन पहले ही खुदा को प्यारे हो चुके थे। अब १५ अगस्त के बाद उनके परिवार म कोई मर्द-बच्चा नही बचा।

मुजीब की बडी लडकी हसीना उस समय यूरोप मे थी। वहा उसका पति अणु वैज्ञानिक है। छोटी लडकी—रेहाना—उसके साथ थी। मुजीब के परिवार मे सिर्फ उनकी ये दो लडकिया ही जिन्दा बची। अगर ये ढाका मे होती तो.....

जब मुजीब का सपरिवार इस प्रकार लोमहर्षक ढग से वध कर दिया गया, तब मेजर शरीफुल हक (जो मेजर दलीम के नाम से अधिक विख्यात हैं) रेडियो स्टेशन के कमरे मे प्रविष्ट हुए और समय से पहले ही रेडियो बगला देश से प्रसारण प्रारम्भ हो गया। हवा की लहरो पर तैरती हुई आवाज सुनाई दी—"मैं मेजर दलीम बोल रहा हू। मुजीब का स्वेच्छाचारी शासन समाप्त हो गया है। मुजीब मारे जा चुके है और सेना ने सारी सत्ता अपने हाथ मे ले ली है। खोदकर मुश्ताक अहमद बगला देश के नये राष्ट्रपति बने हैं। हमने उनका नेतृत्व स्वीकार कर लिया है।"

कहना चाहिए—यही था नाटक का अन्तिम दृश्य।

और फिर पटाक्षेप।

पर पटाक्षेप अभी कहा ? अभी तो नाटक के अन्तिम दृश्य के कुछ सीन बाकी हैं।

मुजीब के घर से एक मील परे का सीन देखिए।

मुजीब के भानजे फजलुल हक मोनी का [illegible] था।

बंगला देश में इस समय दो ही अखबार [illegible] अंग्रेजी में और 'इत्तिफाक' बंगला में, और [illegible] केवल मोनी। युवकों के राजनैतिक [illegible] राजनैतिक दलों को भंग करके जो [illegible] बंगला देश कृषक श्रमिक अवामी [illegible] उससे बढ़कर राजनैतिक शक्ति [illegible]

शेख मोनी को केवल नाग [illegible] काटा गया और धड़ को [illegible] गिद्धों और चीलों की [illegible]

शेख मोनी की पत्नी, [illegible] के लिए आगे बढ़ी तो [illegible] के रास्ते में ही वह [illegible]

हां, शेख मोनी का [illegible] भतीजों को लेकर [illegible]

पर शेख मोनी [illegible] था, हमलावरों [illegible] मंडल में वरिष्ठ [illegible] प्रधान मंत्री [illegible] निर्ममतापूर्वक [illegible]

गए थे। ढाका मे जितने भारतीय दूतावास के कर्मचारी थे, उन सब पर विशेष कृपा की गई थी और इस बात का ध्यान रखा गया था कि उनमे से कोई भी एक-दूसरे से सम्पर्क न कर सके। समाचार भेजने का एकमात्र साधन—टेलीप्रिण्टर—की लाइन बन्द कर दी गई थी।

जिस दिन नाटक का रक्तप्लावित अन्तिम दृश्य घटित हुआ उस दिन भारतीय उच्चायुक्त श्री समर सेन और रूसी राजदूत श्री एण्ड्रेई फेमिन भी ढाका मे नही थे।

मुजीब की रक्षा के लिए रक्षावाहिनी (जिसे वहा वाले राखी वाहिनी कहते हैं और जो एक अर्ध सैनिक सगठन था) कुछ हलचल कर सकती थी, क्योंकि वह मुजीब की ही कृति थी और वह मुजीब के प्रति ही वफादारी की शपथ लेती थी। पर इस तख्ता पलटने वाली क्रान्ति के आयोजको ने उसका भी तुरन्त इलाज कर लिया। ढाका के उत्तर मे १५ मील दूर सावर मे रक्षा-वाहिनी का मुख्यालय था। वहा ५ टैंक भेज दिए गए और राखीवाहिनी के ३० हजार सैनिको से देखते ही देखते हथियार छीन लिए गए। उस समय सावर मे इतने ही सैनिक थे—शेष सैनिक देश के अन्य स्थानो पर बिखरे पडे थे। रक्षावाहिनी के डायरेक्टर जनरल कर्नल नूरुज्जमा उस समय मास्को गए हुए थे और राखीवाहिनी के मुख्य सेनापति अब्दुल हुसैनखा अमरीका गए हुए थे। रक्षावाहिनी अपने नेताओ के बिना पतवार-शून्य नाव बन गई थी। ऐसी नाव पर कब्जा करना मुश्किल नही था।

कहा जाता है कि मेजर दलीम और मेजर नूर ने—जिन्हे एक वर्ष पहले रेडक्रास के मुखिया और ससद् सदस्य, मुजीब के मुहलगे, गाजी गुलाम मुस्तफा से हुई कहा-सुनी के परिणामस्वरूप अपमानित करके सेना से निष्का-सित कर दिया गया था—अपने चन्द जवान साथियो के सहयोग से इस प्रकार अपने अपमान का बदला ले लिया।

क्या राजाओ और राष्ट्राध्यक्षो की यही नियति होती है? या तो सिर पर राजमुकुट होगा, नही तो इस प्रकार उनकी हत्या होगी?

अब से चार वर्ष पहले जिस व्यक्ति को पाकिस्तान ने मृत्युदण्ड दिया, जिस व्यक्ति को फासी पर लटकाने के लिए फासी के खम्भे खडे कर दिए

गए और जिसे स्वयं अपनी कब्र खोदने के लिए विवश किया गया, उस समय तो वह ऐन आखिरी वक्त पाकिस्तान के घबरा जाने के कारण जिन्दा बच गया, पर स्वदेश लौटने पर जिस व्यक्ति को लाखो लोगो ने अपने सिर-आखो पर बिठाकर स्वागत किया था, उसको स्वय उसीके स्वदेश-बान्धवो ने निर्ममतापूर्वक मार दिया।

राष्ट्राध्यक्षो का कत्ल होना अनोखी घटना नही है। सन् १९४७ मे बर्मा के प्रधानमन्त्री आगसान और उनके सारे मन्त्रिमडल को कत्ल कर दिया गया था। सन् १९६१ मे कांगो मे पैट्रिस लुमुम्बा की हत्या कर दी गई थी। गत वर्ष चिली मे उसके राष्ट्रपति की हत्या कर दी गई।

इतना ही क्यो, १९७५ की ११ फरवरी को मलागासी के कर्नल रिचर्ड रात्सीमाडवा की हत्या हुई। मार्च १३ को उत्तर मध्य अफ्रीका के छोड नामक प्रदेश के राष्ट्रपति एगार्टा तोम्बाल बेचे की हत्या हुई। २५ मार्च को सऊदी अरब के शाह फैजल की उनके भतीजे ने हत्या कर दी। और *अब १५ अगस्त को शेख मुजीब का नम्बर आ गया।*

राष्ट्राध्यक्षो की हत्या अनोखी न सही, पर जिस तरह मुजीब के साथ उसके परिवार की, अन्य रिश्तेदारो की और उसके प्रमुख समर्थको की हत्या की गई, वह रूप अनोखा जरूर है।

एक तरुण कवयित्री की कविता याद आती है

खौलता हुआ खून
बर्फ बन गया शिराओ मे
सिर्फ मुट्ठी भिंचती है
खामोश आन्दोलनो
और सर्द खून के शहरो मे
ठहर गया है
आदमीयत का इतिहास
सलीब पर लटके
कई चेहरे
और हर शख्स के कन्धे पर
उसकी अपनी ही लाश है

इस ठिठुरते हुए शहर मे
यकायक यह क्या हुआ
कि आदमी
सभ्यता की
अन्तिम परिणति मे
आदमी को खाने लगा है।

बगला देश मे रहते हुए मैंने मेजर दलीम के बारे मे जो अफवाह सुनी थी, उसका खुलासा बाद मे इस प्रकार हुआ·

जब मुजीब की महानो तक इस बात के लिए आलोचना की जाती रही कि वे भ्रष्टाचार को सहन करते हैं और अपने राजनीतिक कृपापात्र व्यक्तियो को भ्रष्टाचार की इतनी छूट देते हैं कि वे सीमावर्ती अवैध व्यापार से जितना धन बटोरना चाह, बटोर लें, तब तस्करो और चोरबाजारियो के विरुद्ध कार्रवाई करने का फैसला किया गया। शेख ने इस काम म सेना की सहायता ली। उसी सिलसिले मे मेजर दलीम को कोमिल्ला जिले मे तस्कर-विरोधी कार्रवाई के लिए नियुक्त किया गया।

दलीम और उसके साथियो ने जिन तस्करो और जमाखोरो को पकडा उनमे अवामी लीग के कार्यकर्ता ही प्रमुख निकले। एक अवामी लीगी के पास तो एक लाख रुपये का अवैध सामान पकडा गया। तस्कर-विरोधी अभियान मे सेना ने अवामी लीग के कुछ ससद्-सदस्यो को भी लिप्त पाया। बेगम मुस्तफा का नाम भी तभी सामने आया। बेगम का एक पत्र पकडा गया जिसमे उसने अपने रिश्तेदारो को बताया था कि अवैध रूप से जमा किए गए सामान के जखीरे को कैसे ठिकाने लगाया जाए। कोशिश की गई कि यह सारा मामला दब जाए, पर दलीम ने यह पत्र एक प्रमुख अखबार मे प्रकाशित करवा दिया। परिणामस्वरूप दो ससद-सदस्य निलम्बित किए गए। किन्तु कुछ अर्से बाद वह निलम्बन वापस ले लिया गया, जिससे सैन्य कर्मचारियो को लगा कि ऐसी स्थिति म हमारा तस्कर-विरोधी अभियान बेकार है, जब अपराधी बिना दण्डित हुए उल्टे सुर्खरू बने घूमते हैं। इससे सैन्य कर्मचारी नाराज हो गए।

इधर अवामी लीग के कर्ता-धर्ताओ को लगा कि यदि इस तरह हमारे

आदमी तस्करी और जमाखोरी करते पकडे जाते रहे, तो हम जनता मे बदनाम हो जाएगे। तुरन्त अवामी लीग का एक सकटकालीन अधिवेशन बुलाया गया और उसमें निश्चय हुआ कि किसी भी अवामी लीग के ससद्-सदस्य को या उच्च पदाधिकारी को शेख साहब की व्यक्तिगत अनुमति लिए बिना परेशान नही किया जाएगा।

इससे सेना के कनिष्ठ अफसर भी नाराज हो गए।

इसकी पराकाष्ठा पहुची तब जब दलीम के एक रिश्तेदार की शादी में गाजी मुस्तफा के लडके ने किसी लडकी को छेड दिया। गाजी गुलाम मुस्तफा न केवल रेडक्रास के मुखिया और ढाका अवामी लीग के अध्यक्ष थे, मुजीब के खास आदमी भी थे। गाजी के लडके मे और दलीम के रिश्तेदार मे कहासुनी हुई। बात यहा तक बढ गई कि गाजी के परिवार को वहा से जाने के लिए कह दिया गया।

गाजी गुलाम मुस्तफा ने इसका बदला इस तरह लिया कि उसने बाद मे कुछ गुण्डे भेजकर दलीम को उस समारोह मे ही पिटवाया। वे गुण्डे दलीम को जबर्दस्ती घसीटकर शेख मुजीब के घर तक ले आए ताकि उसकी धृष्टता की सजा का आखिरी फैसला हो जाए।

इसके बाद जो कुछ हुआ उसके दो विरोधी विवरण प्राप्त होते है। एक विवरण यह है कि कनिष्ठ सैन्य अफसरो के एक गुट ने गाजी के घर को लूट लिया, जिससे शेख इतने क्रुद्ध हो उठे कि उन्होने दलीम को और १५ अन्य अफसरो को अनुशासनहीनता के आरोप मे कार्यमुक्त कर दिया। दूसरे विवरण मे लूट की चर्चा नही है।

मुजीब की हत्या क्या केवल कुछ कनिष्ठ सैनिक अफसरो की ही करामात थी? या क्या मेजर दलीम की प्रतिशोध-भावना ही इसमे प्रमुख कारण थी?

यह हो सकता है कि मुजीब की हत्या पर शोक प्रकट करना राजद्रोह माना गया हो, पर ऐसा भी क्या प्रतिबन्ध कि बगबन्धु और बगपिता के लिए सारे बगला देश मे किसीने शोक का एक शब्द भी नही कहा। उनके नृशस वध पर किसीकी आख से 'एक कतरा खू न निकला।'

सच तो यह है कि मेजर दलीम ही मुजीब के शत्रु नही थे, स्वय मुजीब ही अपने सबसे बडे शत्रु थे। नही तो क्या कारण है कि लोग उनके सामने

तो उन्हे 'बगबन्धु' कहते थे, किन्तु उनकी पीठ पीछे उन्हें 'बगशत्रु' कहने से बाज़ नही आते।

जिस आध्यात्मिक स्तर की बात करते हुए धर्मशास्त्री कहते हैं "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन" (व्यक्ति स्वय ही अपना बन्धु है और स्वय ही अपना शत्रु है), उस स्तर की बात न भी सही, पर बगबन्धु के बारे मे यह बात राजनैतिक स्तर पर भी सही है कि वे स्वय ही अपने सबसे बडे शत्रु थे।

१९७३ के चुनावो मे जब शेख मुजीब को अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई, तब मुजीब मे आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वास पैदा हो गया। वे अपने-आपको 'एकमेवाद्वितीयम्' और 'हम च मा दीगरे नेस्त' समझने लगे। हरेक सरकारी दफ्तर म और सब सावजनिक स्थानो पर मुजीब के चित्र लग गए। ससद् मे अध्यक्ष की कुर्सी के पीछे भी मुजीब के चित्र। मुजीव सदा बगला देश की जनता को 'मेरी जनता' कहते, जिससे जनता के प्रति उनके ममत्व के साथ-साथ उनका अहम् भी झलकता। वे सदा गर्व-पूर्वक कहते कि "मैं अपनी जनता का पहचानता हू, मैंने अपनी जनता को जनतत्रीय प्रणाली प्रदान की है, नया सविधान दिया है और जनता को वोट का अधिकार प्रदान किया है। और मैं जब तक हू, तब तक देश मे भुखमरी नही होने दूगा, बगला देश मे गृहकलह नही होने दूगा।" वे अपने व्यक्तित्व को जनता के सब वर्गों को जोडने वाली कडी के रूप मे मानते थे। इस शेखी के कारण उन्हे अपने पावो के नीचे से खिसकती ज़मीन नज़र नही आई।

नज़र आती भी कैसे ? वे डिक्टेटरो की तरह खुशामदियो से और राजाओ की तरह दरबारियो से घिरे रहते थे, जिनका काम सदा जी हुज़ूरी करना था। इसलिए सही स्थिति कभी उनके सामने नही आती। जब राजनैतिक हत्याए सीमा पार कर गई और साम्प्रदायिक हिंसा प्रशासन के लिए चुनौती बन गई, जब 'मुस्लिम बागला' का आन्दोलन ज़ोर पकडता गया तथा 'ब्लैक दिसम्बर' के नारे लगने लगे, तब भी मुजीब उन्हे मुट्ठी भर शरारती तत्त्वों की करामात कहकर उनकी उपेक्षा करते रहे। एक बार विदेशी पत्र-कारो ने जब स्थिति की विषमता की ओर उनका ध्यान खीचा तब उन्होने

बं—८

गर्व के साथ कहा था—'मैं जानता हू कि कब क्या करना चाहिए। चिन्ता की कोई जरूरत नही है।"

पर 'चिन्ता की जरूरत' न मानते हुए भी उन्हें चिन्ता तो करनी ही पडी जब अवामी लीग के सदस्यो की हत्या और अराजकता को रोकने के लिए उन्हें दिसम्बर, ७४ मे इमर्जेन्सी लागू करने को बाध्य होना पडा।

उसके एक मास बाद २५ जनवरी को उन्होंने एकदलीय शासन की स्थापना करके स्वय राष्ट्रपति बनकर न्यायपालिका और कार्यपालिका के सारे अधिकार अपने हाथ मे ले लिए। पर न कुप्रशासन हटा, न भ्रष्टाचार।

तब अप्रैल मे उन्होने १०० रुपये के नोट का विमुद्रीकरण किया, टके का अवमूल्यन किया, बडे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया, पर इससे न महगाई दूर हुई, न अर्थव्यवस्था सुधरी। अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने के मूल मे था भ्रष्टाचार, और भ्रष्टाचार करने वाले थे उनके शासनारूढ दल के ही लोग, या उनके अपने रिश्तेदार। जब उनके अपने ही लोग भ्रष्टाचार मे आपादमस्तक लिप्त थे, तब शेख के सामने सच्चाई कैसे प्रकट होती, कौन प्रकट करता ?

इसके अलावा शेख ने सशस्त्र सेनाओ की उपेक्षा कर दी। बगला देश की आठ रेजिमेण्टो के लोग सेना मे शामिल थे—जिनम से अधिकाश पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित थे। इनमे से बहुत-से मुक्तियुद्ध मे भी शामिल थे। उनमे अपने निजी रागद्वेष भी थे और निहित स्वार्थ भी थे, पर उनकी इतनी अधिक उपेक्षा की गई कि नवीन बगला देश के उदय का और स्वाधीनता प्राप्ति का उनका सारा उत्साह ही जाता रहा। सेना को और अधिक निष्क्रिय बनाए रखने के लिए तथा उसके मुकाबले के लिए मुजीब ने जातीय रक्षावाहिनी के नाम से अपना निजी अर्ध-सैनिक सगठन स्थापित कर लिया। यद्यपि सेना की सख्या के मुकाबले म रक्षावाहिनी की सख्या बहुत थोडी थी पर जब नागरिक प्रदर्शनो के दमन के लिए उसका प्रयोग किया जाने लगा तो रक्षावाहिनी भी जनता मे अप्रिय हो गई।

१० जनवरी को जब मुजीब फरीदपुर मे भाषण देने जा रहे थे, तब मैंने देखा कि रक्षावाहिनी के बन्दूकधारी सैनिको ने ढाका से फरीदपुर तक लम्बी सडक का पूरी तौर से घेरकर अन्य सब यातायात बन्द कर दिया

था। यह सब मुजीब की रक्षा के लिए था, या सेना तथा पुलिस के प्रति मुजीब की शका का द्योतक था ?

किसी नेता के बाहर निकलने पर सामान्य पुलिस के बदले बन्दूकधारी सैनिकों का पहरा मेरे लिए नई बात थी। यह इस बात की भी निशानी थी कि मुजीब दिन-प्रतिदिन जनता से दूर होते जा रहे हैं।

फिर शेख के निकटवर्ती और परामर्शदाता कौन थे ? अवामी लीग के वे कार्यकर्ता जो पाकिस्तानी पिशाचो के जुल्मो की चक्की म पिसने के लिए निरीह जनता को परमात्मा की दया पर छोडकर, अपनी जान बचाने के लिए भारत की शरण मे भाग गए थे। उस समय, सघर्ष की तो बात ही क्या, उन्होने जनता की रक्षा के लिए भी कुछ नही किया। और जब बगला देश आजाद हो गया तो शासन की बागडोर सभालने क लिए वे आ धमके, उनकी तुलना भारत के उन लोगो से की जा सकती है जो अग्रेजो के जमाने मे तो अग्रेजो के पिट्ठू रहे और भारत की आजादी के बाद शासनारूढ दल मे शामिल होकर फिर वही सरकारी पिट्ठू का अपना पुश्तैनी पेशा अपनाकर चैन की छानने लगे।

—और मुक्तिवाहिनी के वे युवक जिन्होने अपने सिर पर कफन बाधकर और जान हथेली पर रखकर धूप, वर्षा तथा प्राकृतिक प्रकोपो की परवाह किए बिना, चिथडा मे लिपटे लिपटे ही छापामार युद्ध करके, पाकिस्तान के धन-लोलुप, रूप-लोलुप और रक्त-लोलुप नर-पिशाचो का जीना हराम कर दिया था—वे बगला देश के तरुण और तरुणिया नेतृत्व की आशा से बगबन्धु की ओर निहारते रहे, पर बगबन्धु ने उनकी ओर नजर भी नही उठाई। उन्हें किसीने नही पूछा। बगबन्धु अवामी लीग के दरबारिया से ही घिरे रहे।

मुक्तिवाहिनी के उन उत्साही कार्यकर्ताओ म बहुत-से भीख मागने पर मजबूर हो गए, कुछ ने बेकारी से तग आकर आत्महत्या कर ली, कुछ की लाश को दफन करने के लिए कफन भी नहीं मिला। जो बच गए, वे अन्य राजनीतिक दलो के गुप्त सगठनो म शामिल हो गए।

ऐसी हालत म बगबन्धु ही बगबन्धु नही थे तो और कौन था ?

× × ×

वगवन्धु की हत्या का जघन्य कृत्य जिस आकस्मिकता से किया गया, उसके कारण पहले तो जनता समझ नही पाई कि यह सब क्या हो गया, क्यो हो गया। फिर जब एक-दो दिन बाद जनता कुछ समझ पाई, तब तक आघात का वेग मदा पड चुका था। फिर भी यह सत्य है कि इस हत्याकाण्ड पर बगला देश मे एक पत्ता भी नही हिला।

पर लोग आपस मे यह जरूर पूछने लगे कि विद्रोहियो ने नौ साल के रसेल को क्यो मारा ? क्यो मारा उनकी बेगम को, उनकी उन पुत्र-वधुओ को जिनका विवाह हुए अभी एक महीना भी नही हुआ था ?

शायद इसका उत्तर इस्लाम के इतिहास मे ढूढना पडेगा।

सत्ता के साथ हत्या, लूट, बलात्कार और आगजनी इस्लाम के इतिहास मे इस प्रकार ओतप्रोत है कि उसमे विवेक के लिए कही कोई स्थान नही।

महमूद गजनवी ने अपने भाई को आजन्म कैद म रखकर गजनी की गद्दी छीनी थी। उसके बाद गजनवी के बेटे मसूद ने अपने बाप को अन्धा करके जेल मे डाल दिया और गद्दी हथिया ली।

सन् ११८४ ई० मे मुहम्मद गौरी ने खुसरू मलिक को और उसके पुत्र को गिरफ्तार करके उनकी हत्या कर दी।

सन् १२९६ मे अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी और उसके सब समर्थको की हत्या कर दी। इसी अलाउद्दीन खिलजी न अपने दो भानजो—उमरखा और मगूखा की आखें निकाल ली और तीसरे भानजे अकातखा का सिर काट डाला और उसके सब साथियो की खाल खीच ली।

मलिक काफूर ने दो शाहजादो—खिजरखा और शादीखा—की जेल मे आखे निकलवा ली। उसके बाद मुबारक ने मलिक काफूर को ही मार डाला और अपने तीन भाइयों—खिजरखां, शादीखा और उमरखा को भी मार डाला तथा अपने श्वसुर को भी कत्ल कर दिया। इसी परम्परा को आगे बढाते हुए खुसरूखा ने मुबारक को मार दिया और गाजी मलिक ने खुसरू खा को मार दिया।

सन् १३२७ मे मुहम्मद तुगलक ने अपने भानजे बहाउद्दीन गश्तास्प को जिन्दा जला दिया और उसका मास पकाकर सारे परिवार को परोसा।

शेखजानी को जानवरो की तरह लोहे के पिंजरे मे बन्द करके उसकी हत्या कर दी।

१५६४ मे हुमायू ने अपने भाई कामरान को अन्धा कर दिया और कामरान के एकमात्र पुत्र की हत्या कर दी।

शाहजहा ने अपने बाप जहागीर के विरुद्ध युद्ध किया और उसे बन्दी बना लिया। शाहजहा ने अपने भाइयो—दावर बख्श, परवेज और शहरयार को तथा अपने भानजो—नाहमुरा और होशग—को परलोक भेज दिया।

उसके बाद ८ जून, १६५८ ई० को औरगजेब ने अपने बाप शाहजहा को ही गिरफ्तार करके आगरे किले मे बन्दी बना दिया। १६५६ मे औरगजेब ने अपने बडे भाई दारा शिकोह की हत्या कर दी और सन् १६६१ मे अपने छोटे भाई मुराद की ग्वालियर मे हत्या कर दी।

मैं यही नही कहता कि इस्लाम का यह सही रूप है। नि:सन्देह यह विकृत रूप है। इस विकृति मे मध्य-काल की सामन्तयुगीन प्रवृत्तियो का भी योग है। पर उसके इतिहास मे इस प्रकार की अविवेकपूर्ण हत्याओ की परम्परा इतनी अधिक रही है कि उस इतिहास से परिचित किसी भी व्यक्ति को बगबन्धु की इस प्रकार निर्मम हत्या पर आश्चर्य नही होगा।

शेख मुजीब की इस प्रकार हत्या को जब पाकिस्तान ने 'इस्लामी क्रान्ति' कहकर सम्बोधित किया, तब शायद उसकी वाणी मे इस्लाम का यही इतिहास बोल रहा था।

तो क्या इस हत्याकाण्ड मे पाकिस्तान का भी कोई हाथ था ?

पाकिस्तान जिस प्रकार खुशी से फूलकर कुप्पा हो गया, उससे यही आभास होता है कि उसे इस साजिश का कुछ न कुछ पूर्वाभास रहा होगा। पाकिस्तान ने २४ घण्टे के अन्दर ५०,००० टन चावल, १०० लाख गज लट्ठा और ५० लाख गज महीन सूती कपडा बगला देश भेजने की घोषणा कर दी। बगला देश की नई सरकार को तुरन्त मान्यता दे दी और सब मुस्लिम देशो से अपील की कि वे भी बगला देश की नई सरकार को मान्यता दे दें।

इस सबसे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि पाकिस्तान को कुछ न कुछ जानकारी थी।

पाकिस्तानी पत्रो मे मुस्लिम लीग के नवाब ख्वाजा खैरुददीन और श्री महमूद अली जैसे नेताओ के बयान काफी बढा-चढाकर प्रकाशित किए गए। खैरुद्दीन को पूर्वी पाकिस्तान के स्वातन्त्र्य-सघर्ष का हीरो बताया गया और रेडियो पाकिस्तान से उनका वह लम्बा बयान प्रसारित किया गया कि बगला देश म इस्लाम-समर्थक तत्त्वो द्वारा मुजीब का तख्ता पलटने की भविष्यवाणी उन्होने पहले ही कर दी थी। खैरुददीन और महमूद अली ढाका-काण्ड के एक दिन बाद जनाब भुट्टो से मिले थे और अपनी पेशीनगोई के सफल होने की उनसे बधाई ली थी। पाकिस्तानी पत्रो मे मुजीब के बारे म कहा जा रहा था कि जिस व्यक्ति ने पाकिस्तान को तोडने की कोशिश की, उसका यही हश्र होना चाहिए था। रेडियो पाकिस्तान ने यहा तक कहा था कि शेख काफिरो के हाथ की कठपुतली बन गया था, उसने पाकिस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन से गद्दारी की थी, इसलिए अल्ला ने उसके पापो का बदला दे दिया।

पाकिस्तान के सरकारी सूत्रो ने जनता मे अपनी साख बनाए रखने के लिए यह भी कहा कि भुट्टो ने शेख मुजीब के डिक्टेटराना व्यक्तित्व को कभी महत्त्व नही दिया, वे शेख मुजीब की सरकार को और बगला देश की जनता को हमेशा अलग अलग मानते रहे, और अब बगला देश म जो कुछ हुआ वह सब पाकिस्तान की दूरदर्शितापूर्ण नीति का ही परिणाम है।

पाकिस्तान ने बगला देश को पुन 'पूर्वी पाकिस्तान' कहना शुरू कर दिया, यह घोषणा कर दी कि पूर्वी पाकिस्तान पर कोई भी हमला पाकिस्तान पर हमला समझा जाएगा। उसने मुस्लिम देशो से अपील की कि वे सब मिलकर पूर्वी पाकिस्तान के आन्तरिक मामलो मे बाहरी हस्तक्षेप के विरुद्ध गारण्टी दें। पाकिस्तान यह कहने से भी बाज नही आया कि इस इस्लामी क्रान्ति को समाप्त करने के लिए भारत पूर्वी पाकिस्तान पर हमला करने वाला है।

पाकिस्तान की इस सब उछलकूद का कारण यह था कि बगला देश के रेडियो ने बगला देश को 'पीपल्स रिपब्लिक' कहने के बजाय 'इस्लामिक रिपब्लिक' कहना शुरू कर दिया था। रेडियो से रवीन्द्र सगीत और गीता का पाठ बन्द करके उनके स्थान पर प्रतिदिन कुरान का पाठ प्रारम्भ कर दिया था और 'जय बागला' के बजाय 'बगला देश जिन्दाबाद' कहना प्रारम्भ

कर दिया था।

पाकिस्तान के प्रसिद्ध स्तम्भ लेखक एच० के० वर्की ने लिखा था—"इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अब भारत की चौधराहट खत्म हो चुकी है, और बगला देश ने मुस्लिम राज्य के रूप मे अपना पृथक् स्वतत्र व्यक्तित्व प्रकट करके लाहौर के १९४० वाले प्रस्ताव को (जिसमे मुस्लिम बहुल दो राज्यो की व्यवस्था थी) कायम रखा है।" कुछ लोगो ने यह भी कहना शुरू किया कि अब बगला देश को पुन पाकिस्तान मे मिलने की पहल पाकिस्तान को ही करनी चाहिए और इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि फिर कभी वह भारत के निकट न जाने पावे—उससे सदा के लिए दूर हो जावे।

बगला देश के इस्लामिक गणराज्य घोषित होने का अथ यह होता कि उसने धर्मनिरपेक्षता को तिलाजलि दे दी है, जबकि पाकिस्तान के अस्तित्व का सबसे बडा आधार यही है। द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर ही तो पाकिस्तान का निर्माण हुआ था और पाकिस्तान आज तक धार्मिक असहिष्णुता और घृणा के जल से तथा विदेशी साम्राज्यवादियो की बारूदी खाद से इस दो कौमी नजरिये के दरख्त को पाल पोसकर बडा करता रहा है।

पर पाकिस्तान यह नही समझ पाया कि व्यक्ति विशेष की सनको के आधार पर राज्यो की नीतियो का निर्धारण नही होता। नीतिया बनती हैं सास्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक परम्पराओ के आधार पर, अर्थव्यवस्था के तकाजो से।

उसीका यह परिणाम था कि जब प्रथम और आकस्मिक आघात का झटका टूट गया, तब बगला देश के नव राष्ट्रपति ने इन सब तकाजो को महसूस करते हुए बगला देश को 'इस्लामिक गणराज्य' के बजाय 'लोक गणराज्य' ही माना और सत्ता सभालन के कुछ ही दिनो बाद घोषणा की कि बगला देश धर्मनिरपेक्ष गणराज्य रहेगा और पूर्ववर्ती सरकार की तरह नई सरकार भी लोकतन्त्र, समाजवाद और राष्ट्रवाद को अपनी राजनीति का आधार मानकर चलेगी। ये चारो वही स्तम्भ हैं जिनके ऊपर सोनार बगला की इमारत खडी करने का मुजीब ने स्वप्न लिया था।

बगला देश के रेडियो से पुनः रवीन्द्र संगीत शुरू हो गया, गीता-पाठ भी शुरू हो गया और दशहरे के अवसर पर दुर्गापूजा की दो दिन की छुट्टी भी हुई। पाकिस्तान की सारी उछलकूद व्यर्थ हो गई—जगहसाई हुई, सो अलग।

बगला देश के नये राष्ट्रपति खोदकर मुश्ताक अहमद के सबध मे महाराष्ट्र के एक समाचारपत्र ने लिखा था कि वे नागपुर के रहने वाले हैं। उनके पूर्वज खानदेश के थे, इसलिए वे खानकर कहलाते है। 'खानकर' शब्द बाद मे बिगडकर खोण्डकर, खण्डकर, खाण्डकर और खोदकर आदि न जाने क्या-क्या बन गया। वे १९४७ मे पूर्वी पाकिस्तान चले गए और घर में अभी तक वे मराठी बोलते हैं। उनके भाई एयर मार्शल हैं। दोनो भाई तो आपस मे सदा मराठी मे ही बातचीत करते है।

कभी महाराष्ट्र का सम्पर्क भारत के इस भाग से रहा है और मराठा सैनिक भी यहा अच्छी सख्या मे रहते रहे है, यह ठीक है। पर उक्त तथ्य की कहीं और से पुष्टि नही हो सकी। इतना सबने स्वीकार किया है कि श्री खोदकर ने १९४२ के 'अंग्रेजो! भारत छोडो' आन्दोलन मे जमकर भाग लिया था। बगला देश के मुक्ति-सघर्ष मे भी उनका योग था और प्रवासी सरकार मे वे विदेश मत्री बनाए गए थे। मुजीब के मत्रिमण्डल मे वे शामिल थे और वाणिज्य-व्यापार मत्रालय उन्हीके अधीन था। मुक्ति-सघर्ष के दिनो मे वे सयुक्त राष्ट्र सघ मे जाकर बगला देश का पक्ष रखना चाहते थे, पर नही जा सके। उनके बारे मे पाकिस्तान-पक्षपाती होने की बात भी कही जाती है।

अपने शासन के ५० दिन पूरे होने पर उन्होने रमजान के आखिरी जुमेरात को 'लैलातुल कद्र' के अवसर पर राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पुन जनतत्रीय अधिकारो की स्थापना का वायदा किया। उन्होने घोषणा की कि १५ अगस्त, १९७६ को, अर्थात् इस नवीन राज्य क्रान्ति के ठीक एक वर्ष बाद, राजनैतिक दलो पर से प्रतिबन्ध हट जाएगा, वे अपनी राजनैतिक गतिविधिया पुन. शुरू कर सकेगे। २८ फरवरी, १९७७ को नये चुनाव करवाने की भी घोषणा कर दी गई। इसके साथ ही जनता को

अभिव्यक्ति की स्वतन्तता प्रदान करने के लिए उन्होंने यह भी घोषणा की कि समाचारपत्रों पर से सरकार का स्वामित्व समाप्त कर दिया जाएगा, क्योंकि सरकार का स्वामित्व होने पर समाचारपत्रों की आजादी की बात व्यर्थ हो जाती है। परन्तु उन्होंने यह चेतावनी भी दे दी कि इस आजादी के नाम से अनुशासनहीनता और अव्यवस्था नही चलने दी जाएगी।

यह वही स्वर था जो इमर्जेन्सी लागू होने के बाद से भारत सरकार का स्वर है। वही अनुशासन-पर्व वाली चेतावनी।

—और मुझे निश्चय है कि भारत मे जो कुछ होगा, उसकी छाप बगला-देश पर और बगला देश की छाप भारत पर पड़े बिना नही रहेगी। यह नियति का विधान ही नही, स्वाभाविक भौगोलिक तथ्य है।

आखिर भारत ने मुजीब का समर्थन क्यो किया था? इसीलिए कि वे धर्मनिरपेक्षता के प्रतीक थे। भारत ने पाकिस्तान का अस्तित्व तो अपने हृदय पर पत्थर रखकर स्वीकार कर लिया था, पर साम्प्रदायिकता को वह किसी भी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नही था। जब पाकिस्तान के ही एक भाग मे साम्प्रदायिकता-विरोधी स्वर उभरने लगा तो भारत को प्रसन्नता होनी ही थी।

स्वतन्त्र बगला देश मे दुर्गापूजा और रवीन्द्र सगीत को आदर का स्थान मिला और दुर्गापूजा के समारोह मे ढाका विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, छात्र तथा फिल्म कलाकार भी शामिल हुए तो भारत को पहले अपने कानो पर विश्वास नही हुआ, फिर पीछे वह इसे सर्वथा स्वाभाविक मानकर आश्वस्त हो गया। मुजीब के उदय से विभाजन के समय का दु स्वप्न भग हो गया। भारत ने समझा कि अपने इस पडोसी के साथ तो अब शान्ति और मैत्रीपूर्वक रहा जा सकेगा। भारत की जनता यही तो चाहती थी।

बगला देश का भविष्य क्या होगा यह इस बात पर निर्भर है कि वह धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता म से किसे अपनाता है।

विश्व के विशेषज्ञो का कहना है कि यदि भारत और बगला देश सम्मिलित रूप से प्रयत्न करें, तो गगा और ब्रह्मपुत्र के मैदान मिलकर दुगना अनाज पैदा कर सकते हैं। खाद्यान्न की मूल समस्या हल होने पर इस समग्र भूखण्ड को अन्य दृष्टियो से भी आत्मनिर्भर बनने मे सहारा लगेगा।

बगबन्धु ने गलतिया की होंगी, पर इससे कौन इन्कार कर सकता है कि उन्होंने सच्चे हृदय से बगला देश को प्यार किया था और उसे 'सोनार बागला' बनाने का स्वप्न लिया था।

इस तथाकथित राज्यक्रांति के दौरान हुए हत्याकाण्ड स बगला देश के रगमच पर वह नाटक समाप्त हो गया जो लगभग तीस साल पहले रगमच पर मुजीब के पदापण से प्रारम्भ हुआ था।

एक नाटक का पटाक्षप हो गया।

दूसरा नाटक शुरू हो गया।

१२
लपटों का घेरा

१५ अगस्त, १९७५ को धानमण्डी मे बंगबन्धु के निवासस्थान पर सेना के कुछ असन्तुष्ट कनिष्ठ अफसर खून की होली खेल चुके। उसी १५ अगस्त को प्रातः १० बजे बगबन्धु ढाका विश्वविद्यालय के छात्रो को सम्बोधित करने के लिए जाने वाले थे। छात्र देश के भावी कर्णधार होते हैं। छात्रो के सहयोग से ही बगबधु ने कायदे आजम स्वर्गीय मुहम्मद अली जिन्ना की सभा मे 'बगला भाषा अमर रहे' का नारा लगाकर पाकिस्तान के विरुद्ध विद्रोह का झडा पहली बार बुलद किया था। बगला देश की स्वाधीनता के सघर्ष मे भी छात्रो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी और मुक्तिवाहिनी का तो जैसे दारोमदार ही छात्रो पर था।

शेख मुजीबुर्रहमान ने जब से बगला देश के शासन की बागडोर सभाली थी तब से अपनी अन्य व्यस्तताओ की वजह से वे छात्रो की इस युवा शक्ति को भूले-से हुए थे। वे शायद सोचते थे कि राजनीतिज्ञ और सेना दोनो मिलकर राष्ट्र का शासन चला लेंगे। पर बगला देश मे बगबन्धु राजनीतिज्ञो और सैन्य अधिकारियो की आपसी होड, परस्पर दोषारोपण, महत्त्वाकाक्षाओ का विस्फोट, भ्रष्टाचार—और परिणामत. प्रशासन और कानून-व्यवस्था की निष्फलता देख चुके थे।

इसीलिए शायद उन्हे फिर छात्रो की याद आई थी। शायद उन्हीके सहयोग से वे 'सोनार बागला' के निर्माण की कोई नई योजना मन ही मन सोच रहे हों। उनके आगमन के समाचार से छात्र भी बहुत उत्साहित थे। शायद छात्रो के मन मे भी अपने देश के राजनीतिज्ञो और सैन्य अधिकारियो की आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण राष्ट्र के भविष्य के प्रति वैसी ही क्षोभपूर्ण आशका थी और वे भी बगबन्धु के नेतृत्व मे किसी नई दिशा की खोज मे थे।

सूर्योदय से पहले ही धानमण्डी म बगबन्धु और उनके परिवार पर दनादन गोलियो की वर्षा की आवाज जब आसपास पहुची, तब जनता की पहली प्रतिक्रिया यही थी कि छात्रगण ही बगबन्धु के आगमन की खुशी म पटाख और आतिशबाजी छोड रहे हैं।

दूसरी प्रतिक्रिया यह थी कि १५ अगस्त भारत का विदेशी दासता स मुक्ति का पर्व है, इसलिए हो न हो, भारतीय दूतावास के कर्मचारी सवेरे से ही पटाखे छोडकर अपना आह्लाद प्रकट कर रह है।

पर इनम स कोई भी बात सही नहीं थी।

स्वयभू नता मजर दलीम ने बगला देश क रेडियो से पहल यह घोषणा की कि बगबन्धु को गिरफ्तार कर लिया गया है। बाद मे कुछ घटे बाद घोषणा की कि बगबन्धु मारे जा चुके है।

सोती हुई जनता अपनी आखे मलती मलती उठी। तब तक मच पर पट-परिवर्तन हो चुका था। नय नायक और नय पात्र मच पर कब्जा जमाए अपने अभिनय की बानगी जनता का दिखाने के लिए सन्नद्ध थे। प्रेक्षक अभी सन्नद्ध नही थ। प्रक्षागृह भी खाली था। पर मच पर नाटक प्रारम्भ हो गया था।

जनता समझ ही नही पाई कि राता रात यह क्या हो गया।

और जब तक जनता सभली तब तक एक क बाद एक कई दृश्य मच पर गुजर चुके थे। कहानी आगे बढ चुकी थी।

बगला देश की आजादी कुछ देशो को नही पची। रह रहकर उनके पेट म पीडा होती थी कि हमारी इच्छा के विरुद्ध यह सब कैसे हो गया। जिन साम्राज्यवादियो ने भारत का कमजोर करने के लिए देश का विभाजन किया था और अपने स्वार्थो की पूर्ति क लिए पाकिस्तान का निर्माण किया था, वे पाकिस्तान का टूटना कैसे बर्दाश्त कर सकते थे ? उन्ह भारत का विघटन तो मजूर था, पर पाकिस्तान का विघटन नही।

उसकी इच्छा के बिना खिला न कोई फूल' की भगिमा से सारे ससार को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का स्वप्न देखने वाला अमरीका और सारे एशिया को अपने वर्चस्व क अधीन रखने का ख्वाब देखने वाला चीन, तथा भारत विद्वेष से जन्मा और पला पुसा पाकिस्तान न बगला देश के

अभ्युदय को पसन्द करते थे, न शेख मुजीबुर्रहमान के भारत और सोवियत सघ के साथ मैत्रीभाव को।

कभी फील्डमार्शल अयूब खा ने अमरीका मे अमरीकावासियो को सम्बोधित करते हुए छाती फुलाकर कहा था—"जब समग्र एशिया में कम्युनिज्म का मुकाबला करने के लिए तुम्हें कही पाव रखने को एक इच ज़मीन भी नही मिलेगी, तब तुम पाकिस्तान के महत्त्व को समझोगे जो कम्युनिज्म से लोहा लेने के लिए तुम्हारे साथ न केवल कन्धे से कन्धा भिडाकर खडा होगा बल्कि सारे पाकिस्तान को तुम्हारे लिए सैनिक छावनी बना देगा।" इसी कम्युनिज्म के विरोध की खातिर अयूबखा अमरीका से भारी सख्या मे हथियारो की खैरात पाते रहे।

इसके अलावा कभी माओ की सरकार अपने यहा के बच्चो के हाथो मे खिलौने वाली बन्दूक देकर सामने अमरीकी राष्ट्रपति का पुतला रखकर उसपर गोली दागने को कहा करती थी और इस प्रकार बच्चो की निशानेबाजी का अभ्यास कराया करती थी।

अमरीका सारे ससार मे लोकतत्र का अलम्बरदार बनता है, पर पाकिस्तान के तानाशाहो का आख बन्दकर सदा समर्थन करता रहा है। एक तरफ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे कम्युनिस्ट-विरोधी गुट का सरताज बनता है, पर चीन से प्रणय की नित नई पीगें बढाने का सिलसिला जारी है। क्या चीन, अमरीका और पाकिस्तान की दोस्ती किसी राजनैतिक सिद्धान्त या नैतिकता पर आधारित है? जहा तक राजनैतिक सिद्धान्तो का प्रश्न है, ये तीनो देश तीन ध्रुवो की दूरी पर विद्यमान हैं। पर इन तीनो की दोस्ती बरकरार है। 'चोर-चोर मौसेरे भाई' का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है!

यही तीनो देश मिलकर बगला देश मे किसी न किसी रूप में गडबडी करवाने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे। बगला देश की आजादी से इन्ही तीनो की नीद हराम हुई थी। हाल मे ही अमरीकी गुप्तचर विभाग (सी० आई० ए०) के कारनामो का जिस तरह भडाफोड हो रहा है, उससे इसी बात की पुष्टि होती है कि अमरीकी जासूस राष्ट्राध्यक्षो की हत्या करवाने मे अनैतिकता के किसी भी स्तर तक जा सकते हैं।

इसके अलावा, अर्धविकसित देशों में अक्सर होता यह है कि साधनों की तो कमी होती है, पर लोगों की आकांक्षाएं बहुत बढ़ जाती हैं। सभी लोग कोशिश करते हैं कि अधिक से अधिक साधन उन्हीके हाथ में आ जाएं। बंगला देश के राजनीतिज्ञों में और सैन्य अधिकारियों में इन साधनों को हस्तगत करने की होड़ लग गई। राजनीतिज्ञ लोग ऊंचे से ऊंचे स्थान पर पहुंचने के लिए सैन्य अधिकारियों की सहायता लेने लगे और सैन्य अधिकारी उच्च पदों पर पहुंचने के लिए राजनीतिज्ञों की सहायता लेने लगे।

ऐसे समय भ्रष्टाचार को खुलकर खेलने का मौका मिलता ही है। मजेदार बात यह है कि राजनीतिक लोग सैनिक अधिकारियों को भ्रष्ट बताते और सैनिक अधिकारी राजनीतिज्ञों को भ्रष्ट बताते। बात शायद दोनों ओर सही थी। पर असली भ्रष्टाचारी कौन है, यह कौन पता लगाए? शेख मुजीब अजीब दुविधा में थे। वे राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों में से किसीको भी अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। इसी दुविधा में संभवतः उन्हें 'छाया' का ध्यान आया था।

जब राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों में देश-हित को ताक पर रख कर स्वार्थ-साधन की होड़ लग जाए, तब विदेशी शक्तियों के लिए उनके आगे चारा फेंकने का रास्ता खुल जाता है। यह चारा पैसे के रूप में भी हो सकता है, और हथियारों के रूप में भी।

बंगला देश में ऐसा एक भी राजनैतिक दल नहीं था जिसका अपना सशस्त्र स्वयंसेवक संगठन न हो। जब शेख मुजीब ने सब राजनैतिक दलों को भंग करके केवल एक राजनीतिक दल (बंगला देश कृषक श्रमिक अवामी लीग) रहने दिया, तब विभिन्न राजनैतिक दलों के सशस्त्र संगठन भूमिगत हो गए। शेख मुजीब ने अवैध हथियारों को स्वेच्छया जमा करवाने की चेतावनी दी। लगभग ५००० व्यक्ति अवैध हथियार रखते पकड़े भी गए, पर समस्या समाप्त नहीं हुई। बंगला देश में व्याप्त अराजकता का कारण हथियारों का यह व्यापक प्रसार ही है।

पाकिस्तानी सेना बंगला देश से जाते जाते अपने गुर्गों को जो हथियार सौंप गई, इन अवैध हथियारों में सबसे अधिक संख्या उन्हींकी है। पिछले महीनों में चीन, पाकिस्तान और अमरीका ने भी प्रच्छन्न रूप से इस दिशा

म कोई कसर नही रखी । इसीलिए स्वभावत राजनैतिक और सैनिक असन्तोष ज्यो-ज्यो बढता गया त्यो-त्यो अराजकता भी बढ़ती गई ।

जिन सात मेजरो ने बगबन्धु की, उनके परिवार को और निकट रिश्तेदारो की नृशस हत्या की थी, उन्हे अपने इस कुकृत्य पर पश्चाताप हो या न हो, पर वे यह बखूबी जानते थे कि जिस दिन बगला देश की जनता अस लियत को पहचानेगी, उस दिन उसके आक्रोश का शिकार उन्हे अवश्य बनना पडेगा । इसी भय से वे जनता के सामने आने से बचते थ और अपने निवास स्थान छोडकर बग भवन (राष्ट्रपति निवास) मे ही रहते थे । बग भवन पर टैको का पहरा था ।

राष्ट्रपति खोदकर कहने को राष्ट्रपति थे, पर वस्तुत इन सातो मेजरो के बन्दी थ और उन्हीके इशारे पर चलते थे । ये सातो मेजर, जिनमे मेजर दलीम और मेजर फारुख प्रमुख थे, सपूर्ण सेना पर अपना नियत्रण देखना चाहते थे । पर अधिकाश वरिष्ठ सैनिक अधिकारी समझते थे कि व्यक्तिगत द्वेष का बदला चुकाने के लिए ही इन्होने बगबन्धु की हत्या की है । इस हत्या के पीछे किसी सिद्धान्त या देशहित की बात सवथा मिथ्या है ।

विद्रोही मेजर समझते थे कि बगबन्धु क जो घनिष्ठ साथी बिना किसी आरोप के जेल मे बन्द कर दिए गए हैं, अभी तक वे जनता मे लोकप्रिय हैं, बगला देश की आज़ादी म उनका अप्रतिम योगदान है वे अपने प्रभाव का उपयोग करके किसी भी दिन सत्ता हथिया सकते हैं ।

१५ अगस्त, १९७५ को मुश्किल से ढाई महीना बीता था कि नवम्बर के शुरू म ही उनकी शैतानियत ने फिर जोर मारा ।

३ नवम्बर को सारा भारत दिवाली की खुशिया मना रहा था कि इन विद्रोही मेजरो ने बगला देश की राजनीति का ऐसा दिवाला निकाल दिया कि हरेक सभ्य मनुष्य के मुह पर उनके लिए धिक्कार' क सिवाय और कोई शब्द नही बचा ।

इन्होने सेंट्रल जेल के अन्दर जाकर सवथा असहाय निरस्त्र-सगी, साथी शून्य चार महत्त्वपूण वरिष्ठतम राजनीतिक नेताओ की हत्या कर दी ।

कौन थे ये चारो वरिष्ठ राजनीतिज्ञ ?

सैयद नज़रुल इस्लाम—जो शेख मुजीब के पाकिस्तान की जेल म बदी

रहने पर बंगला देश के कार्यवाहक राष्ट्रपति थे।

श्री ताजुद्दीन अहमद—जो अस्थायी सरकार के प्रधान मंत्री थे।

श्री ए० एच० एम० कमरुज्जमा—जो मुजीब के मंत्रिमंडल में वाणिज्य मंत्री थे।

श्री मंसूरअली—जो मुजीब मंत्रिमंडल में प्रधान मंत्री थे।

राष्ट्रपति खोदकर जिस प्रकार इन सात मेजरों की कठपुतली बन हुए थे, उससे सेना के वरिष्ठ अधिकारी अंदर ही अंदर बहुत विक्षुब्ध थे। उक्त चार वरिष्ठ और लोकप्रिय राजनीतिज्ञों की हत्या ने जैसे पानी सिर के ऊपर से गुजार दिया।

ब्रिगेडियर खालिद मुशर्रफ से यह शैतानी हरकत सहन नहीं हुई। वे ढाका की सैनिक टुकड़ी के कमांडर थे और मुजीब के प्रबल समर्थक थे। पन्द्रह अगस्त के बाद से ही मुशर्रफ ने अपने साथियों को कुछ महत्त्वाकांक्षी कनिष्ठ अफसरों की कारगुजारियों के विरुद्ध तैयार करना शुरू कर दिया था।

मुशर्रफ को लगा कि खोदकर और उनके सलाहकारों के विरुद्ध मोर्चा लेने का सही अवसर आ गया।

मुशर्रफ ने स्थल सेना की तीन बटालियनों की मदद से ढाका शहर पर कब्जा कर लिया, छावनी की ओर जाने वाली सड़कों पर सख्त पहरा लगा दिया और ढाका हवाई अड्डे पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया।

राष्ट्रपति भवन पर तैनात टैंकों पर हेलिकोप्टर से और रेसकोर्स मैदान में तैनात टैंकों पर हवाई जहाजों से हमला करने का दिखावा किया और उन टैंकों को अपना गोला-बारूद खाली कर वापस छावनी में जाने का आदेश दिया। खोदकर पहले इसके लिए तैयार नहीं थे, पर बाद में खालिद मुशर्रफ से बातचीत के द्वारा समस्या सुलझाने को मान गए।

इस वार्ता के बहाने खोदकर ने सारे मेजरों के लिए एक विशेष विमान की व्यवस्था करने का समय पा लिया और उनके परिवारों समेत उन्हें बैंकाक भेज दिया।

खोदकर ने वक्त की नजाकत को समझते हुए मुख्य न्यायाधीश अबू सादत मुहम्मद सईम को राष्ट्र की बागडोर सौंप दी।

नए राष्ट्रपति ने राष्ट्र के नाम संदेश में जातीय संसद् (पार्लियामेंट)

भंग करने का और १९७७ के फरवरी मास मे आम चुनाव कराने का ऐलान किया। साथ ही लोकतन्त्र और सभी पडोसी देशो के साथ मैत्रीपूर्ण सबधो मे आस्था व्यक्त की।

इस सबसे ऐसा लगा कि मुजीव-समर्थक जो तत्त्व पहले घटना की आकस्मिकता के कारण स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूढ हो गए थे, अब जाग गए हैं। यह भी लगा कि अब बंगला देश म राजनैतिक स्थिरता के आसार पैदा हो गए हैं। खासकर छात्रो के उल्लास की सीमा नही थी। उन्हें बंगबन्धु की अन्तिम अभिलाषा का भी ध्यान आया होगा।

ढाका विश्वविद्यालय के हजारो छात्र और आसपास के हजारो आबाल-वृद्ध नर-नारी जलूस बनाकर बंगबन्धु के घर गए। जलूस के आगे शेख मुजीव की बडी तस्वीर थी। सबने उनकी मृत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की और उसके बाद पास के मैदान मे एकत्र होकर बंगबन्धु और उनके परिवार की स्मृति मे शोक-सभा करके अपनी अकीदत के फूल चढाए। लोगो की आखो मे आसू थे, भावावेश से कंठ अवरुद्ध थे, पर हृदय मे इस बात का सन्तोष था कि आखिर बंगपिता को याद करना अब दण्डनीय अपराध तो नही रहा। जनता ने सरकार से माग की कि शेख मुजीव को बाकायदा 'राष्ट्र का पिता' घोषित किया जाए और उन्हें वैसा ही सम्मान दिया जाए।

पर नाटक मे कोई दृश्य स्थिर नही रहता।

फिर पट-परिवर्तन हो गया।

चार दिन की अवधि भी नही बीती थी कि खालिद मुशर्रफ की हत्या कर दी गई और मेजर जनरल जियाउर्रहमान, जिन्हे पहले मुख्य सेनापति से हटा दिया गया था, पुन मुख्य सेनापति बन गए और उन्होंने स्वय को मुख्य मार्शल ला प्रशासक घोषित कर दिया।

अब जैसे अराजकता को और खुलकर खेलने का मौका मिल गया। सैनिकों और नागरिको, सैनिको और छात्रो, तथा सैनिको और सैनिको मे छिटपुट झडपें होने लगी।

ढाका विश्वविद्यालय के छात्र मुजीव के समर्थक थे। जियाउर्रहमान के समर्थक सैनिको ने इन छात्रो के बल निकालने के लिए विश्वविद्यालय पर

गोलिया बरसाई। छात्रों ने जमकर मुकाबला किया। सैनिकों की और टुकड़िया आई। छात्र फिर भी डटे रहे। बहुत-से छात्र और शिक्षक गिरफ्तार किए गए। सैनिक शासन ने दमन-चक्र तेज कर दिया। तब बहुत-से छात्र नेता भूमिगत हो गए।

बगला देश की नौसेना का केन्द्र है चटगाव। वहा शेख मुजीब के निकट सहयोगी मलिक चौधरी की तथा अन्य अनेक प्रगतिशील नेताओ की हत्या कर दी गई, जिससे नौसेना के सैनिक भी उत्तेजित हो उठे और जिया-उर्रहमान की समर्थक स्थल सेना की एक टुकड़ी के साथ उनकी अच्छी-खासी झड़प हो गई। रगपुर और सैदपुर मे भी सैनिको ने लूट, शूट और बलात्कार प्रारम्भ कर दिए।

बगला देश जैसे गृहयुद्ध के कगार पर पहुच गया।

सात मेजरो ने बैंकाक मे जाकर जो वक्तव्य दिया, उससे स्पष्ट हो गया कि क्रान्ति की प्रतिक्रान्ति मे अमरीका और पाकिस्तान की शह थी। उन्होंने पाकिस्तान या अमरीका से नागरिकता की प्रार्थना की। पर ऐसे नृशस हत्यारो को अपने यहा शरण देने से जहा पाकिस्तान या अमरीका की भी कलई खुल जाती, वहा उन दोनो को अपने देश की जनता के सामने जवाब देना भी मुश्किल हो जाता।

बैंकाक मे उन्हे रहते-रहते १५ दिन हो गए, तब थाईलैंड की सरकार ने उन्हे और अधिक समय तक रखने मे असमर्थता व्यक्त की। अन्त मे ये सातो मेजर लीबिया चले गए। इस समय ससार मे दो ही राष्ट्राध्यक्ष ऐसे हैं जो अपने को अतिमानव से कम नही समझते। एक है—युगाडा के इदी अमीन और दूसरे हैं लीबिया के कर्नल गदाफी। ऐसे नर-पशुओ को लीबिया के राष्ट्राध्यक्ष ही शरण दे सकते थे।

इस सब घटनाचक्र पर भारत का चुप रहना बडा मुश्किल था। भारत की प्रधान मन्त्री ने बगला देश की सरकार को चेतावनी दी कि वहा स्थित भारतीयो के जानमाल की रक्षा की उसकी नैतिक जिम्मेदारी है। बगला देश की सरकार ने भी यह स्वीकार किया। पर गृहयुद्ध की लपटो से घिरी बगला देश की सरकार कितनी असमर्थ है और पाकिस्तानी तथा अमरीकी तत्त्व वहा किस प्रकार सक्रिय हैं इसका भी सबूत मिलते देर नही लगी।

भारत को बदनाम करने के लिए अमरीकी पत्रो द्वारा यह मनघडन्त समाचार प्रसारित किया गया कि भारत बगला देश के आन्तरिक मामलो म हस्तक्षेप कर रहा है और सीमा पर दोनो देशो की सनाओ मे झडप हो रही है। साथ ही ढाका स्थित भारतीय दूतावास मे एक बम रख दिया गया। यह तो गनीमत हुई कि यथासमय उस बम का पता लग गया, नही तो अनहोनी होने मे कसर क्या थी।

इस घटना के लगभग सप्ताह-भर बाद ही २१ नवम्बर को अमरीकी विदेश विभाग के दो वरिष्ठ अधिकारी ढाका पहुचे। चौबीस नवम्बर को 'नाटो' से सम्बद्ध पाकिस्तान के दो मेजर जनरल भी विमान से ढाका पहुचे। उनके पहुचते ही सेना ने सारे हवाई अड्डे को अपने नियत्रण मे ले लिया। अन्य किसी भी विमान को ढाका मे नही उतरने दिया गया। पाकिस्तानी मेजर जनरल हवाई अड्डे से सीधे बग भवन गए। वहा उन्होने प्रधान सेनापति और मुख्य मार्शल ला प्रशासक जियाउर्रहमान से भेंट की। वे बगला देश के दो डिप्टी मार्शल ला प्रशासको से भी मिले। ये दोनो डिप्टी पाकिस्तानी सेना के सदस्य के रूप मे सन ७१ से पहले 'नाटो' से सम्बद्ध थे। पाकिस्तानी मेजर जनरल, दो घटे बाद, जिस विमान से आए थे, उसी विमान म वापस कराची चले गए। उनके जाते ही सेना ने हवाई अड्डे से अपना नियत्रण हटा लिया।

इससे पूर्व बगला देश का एक शिष्टमडल चीन के लिए भी रवाना हो चुका था। इस शिष्टमडल मे कौन लोग थे, यह विदित नही हो सका। व्यापारिक शिष्टमडल के नाम से सैनिक शिष्टमडल भी तो जा सकता है।

इस प्रकार जियाउर्रहमान पाकिस्तानी सेनाधिकारियो, अमरीकी राजनीतिज्ञो और चीन के व्यापारियो से गुपचुप क्या परामर्श करते रहे, यह तो वही जानें, पर जिस दिन दो पाकिस्तानी मेजर जनरल ढाका आए थे, उसी दिन राजनय के इतिहास मे एक भयकर घटना घट गई।

भारतीय उच्चायुक्त श्री समर सेन प्रात साढे नौ बजे भारतीय उच्चायोग (दूतावास) म पहुचकर ज्यो ही कार से उतरे कि कुछ सशस्त्र व्यक्तियो ने, जो पहले से ही स्वागत-कक्ष म बैठे उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, कक्ष से बाहर निकलकर अपने कपडो के नीचे छिपाई पिस्तौलें निकाल

ली और समर सेन पर गोली-वर्षा कर दी। गोली समर सेन के कंधे मे लगी। वे तुरन्त ज़मीन पर गिर पड़े।

चौकीदार भी गाफिल नही थे। उन्होने भी तुरन्त गोली चलाई। चार हमलावर वही ढेर हो गए। दो गिरफ्तार कर लिए गए। इस मुठभेड मे दो चौकीदार भी घायल हो गए।

बाद मे पता लगा कि ये हमलावर बंगला देश मे जातीय समाजतान्त्रिक दल के नाम से विख्यात राजनैनिक दल के सदस्य थे। सात नवम्बर को जियाउर्रहमान ने सेनाध्यक्ष बनते ही जिन बन्दियो को छोडा था, उनमे उक्त दल के दो नेता—एम० ए० जलील और अब्दुर्रब भी—शामिल थे और इन्होंने ही समर सेन पर हमला करने की योजना तैयार की थी।

समर सेन की कधे की हड्डी टूट गई थी। आपरेशन करके कधे से गोली निकाल दी गई। वे बच गए।

एक बार फिर अनहोनी टल गई।

अगले दिन भारतीय वायुसेना का एक विमान कुछ डाक्टरो और विदेश विभाग के वरिष्ठ अधिकारियो को लेकर ढाका पहुचा। बगला देश की सरकार ने विमान को हवाई अड्डे पर उतरने की अनुमति दी। डाक्टरो ने समर सेन का परीक्षण किया और जीवित बच जाने पर उन्हें बधाई दी।

विमान गया था श्री समर सेन को भारत लाने के लिए। उनका दिल्ली या कलकत्ता मे—जहां वे चाहे—इलाज कराने की व्यवस्था की गई। पर समर सेन ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। उन्होने ऐसे नाज़ुक मौके पर भारत आने से इन्कार कर दिया और ढाका मे ही अपने पद पर बने रहने का आग्रह किया।

श्री समर सेन भारत के वरिष्ठतम राजनयज्ञो मे से हैं। ये सयुक्त राष्ट्र सघ मे भारत के स्थायी प्रतिनिधि रह चुके हैं और विभिन्न देशों के कूट-नीतिक कुचक्रो को अच्छी तरह समझते हैं। शायद उन्होंने सोचा होगा कि मेरे इस प्रकार घायल अवस्था मे भारत चले जाने से दोनो देशो मे पारस्परिक कटुता का कही कोई नया अध्याय न खुल जाए। क्या कहने हैं श्री समर सेन की इस जी-दारी के!

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बगला देश की सरकार को १५ दिन पहले

भारतीयों के जानमाल की रक्षा के लिए जो चेतावनी दी थी, क्या समर सेन पर हमला उसी चेतावनी का उत्तर था ?

अगले दिन बंगला देश के राष्ट्रपति श्री सईम ने श्रीमती इन्दिरा गांधी को सीधा फोन करके खेद प्रकट किया और भविष्य में इस प्रकार की घटना न होने देने का आश्वासन दिया।

प्रश्न यह है कि इस समय बंगला देश में जैसी अराजकता और गृहयुद्ध की स्थिति चल रही है, उसे देखते हुए क्या बंगला देश की सरकार के किसी आश्वासन की कोई कीमत रह जाती है ? क्या उसमें इतनी सामर्थ्य है ? यदि समर सेन को कुछ हो जाता तो स्थिति कितनी गंभीर हो जाती ! परमात्मा की दया से वे बाल-बाल बच गए, यही सन्तोष का विषय है। अब बंगला देश सरकार की कृतसंकल्पता इसी बात से परखी जाएगी कि भारत सरकार ने जो मांग की है उसे पूरा करने में वह कितनी तत्परता दिखाती है। भारत ने मांग की है कि श्री समर सेन पर हमले के पूरे षड्यंत्र का पर्दाफाश किया जाए और अपराधी व्यक्तियों को उचित दण्ड दिया जाए।

याह्या खां के शासन के समय पाकिस्तानी सेना ने बंगला देश के बुद्धिजीवियों को चुन-चुनकर मारा था। अब राजनीतिज्ञों को चुन-चुनकर खत्म कर दिया गया। पन्द्रह अगस्त को और 3 नवम्बर को नृशंस हत्याओं का लक्ष्य निश्चित था। शीघ्र तानाशाह बनने का स्वप्न देखने वाले नहीं चाहते थे कि उनका एक भी राजनीतिक नेता बंगला देश में जीवित बच जाए जो उन्हें अस्वीकार्य हो।

यह है नही । हमे तो जिस दिन इशारा मिलेगा, हम यह काम छोडकर अलग हो जाएगे, उसके बाद हम किसी भी दोजख मे जाने को तैयार हैं ।"

जिसका काम उसी को साजे ।

सैनिक अधिकारियो मे राजनैतिक समस्याओ की कितनी समझ होती है, यह कल्पना का विषय है । भविष्य मे आने वाले संकटो का पूर्व अनुमान लगाकर वे देश को सही दिशा-निर्देश दे सकेंगे, या देश की नाव को बीच मझधार में डुबो देंगे, यह अभी कौन कह सकता है ?

इस समय बगला देश चारो ओर आग की लपटो मे घिरा है । इस घेरे मे से निकल सकना उसके लिए निकट भविष्य मे सभव नही दीखता । यह लपटो का घेरा विशाल प्रश्नचिह्न बना इतिहास की छाती पर खडा है ।

आम जनता मे इस समय निराशा की कैसी स्थिति है, इसका आभास वहीं के एक नागरिक के इस उद्गार से हो जाएगा जो उसने किसी विदेशी पत्रकार के सम्मुख प्रकट करने का साहस किया था—"हमारे उद्धार का कोई उपाय नजर नही आता । हमारी सब सस्थाए और सगठन समाप्त हो चुके हैं । हरेक व्यक्ति भयभीत है, कोई न कोई प्रतिशोध की खातिर उसे मारने को तैयार बैठा है । अब हम रात को निश्चिन्त होकर सो भी नही सकते । या खुदा ! हमारा क्या होने वाला है ?"

ऐसे समय बारम्बार भारत की प्रधान मत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी की चेतावनी की ओर ध्यान जाता है । वे कहती हैं :

> "हमे अपने विकास का मार्ग छोडने को विवश करने के लिए चारो ओर से दबाव डाला जा रहा है । इसी उद्देश्य से भारत के कुछ पडौसी देशो को भारी मात्रा मे हथियार दिए जा रहे हैं । पर हमने जो रास्ता चुना है, उससे दुनिया की कोई ताकत हमे हटा नही सकती ।"

इसके बाद जब श्रीमती गाधी कहती हैं :

> "किसी व्यक्ति को खत्म किया जा सकता है, लेकिन उसके आदर्शों और सिद्धान्तो को खत्म नही किया जा सकता । यदि ये सिद्धान्त सही हैं, तो लाखो-करोडो लोग उन्हें बढावा देने के लिए आगे आते जाएगे ।"

—तब ऐसा लगता है कि यह वाणी केवल भारत की आत्मा की पुकार नही है, प्रत्युत बगला देश के प्रत्येक निवासी की भी अन्तरात्मा की आवाज यही है।

यह है आत्मविश्वास की वाणी, 'सत्यमेव जयते' मे आस्था की वाणी, और सत्य की विजय के लिए आत्मोत्सर्ग तक के लिए सदा तैयार रहने के लिए शाश्वत ओज और तेज की वाणी।

लाखो-करोडो पददलितो, शोषितो, अभावग्रस्तो, और साम्राज्यवाद के कुचक्रो से पीडितो के मन म आशा का सचार कर देने वाली और विश्व व्यापी अनैतिकता के अम्बार पर मानवीयता और नैतिकता का झडा गाडने की हिम्मत रखने वाली, अरिदलसहारिणी, आधुनिक दुर्गा, देवी इन्दिरा जब कहती हैं

"मैं जब कहती हू कि खतरा है, तो सचमुच खतरा होता है।"

और—

'जब पडोस म आग लगी हो तो उसकी तपिश हम तक भी पहुचती है। उस समय हम चुप नही बैठ सकते। उस आग को बुझाना हमारा नैतिक कर्तव्य हो जाता है। हम नही चाहते कि फिर लाखो लोग शरणार्थी बनकर भारत पहुचें।"

—तब इस साहसिक वाणी के मर्म को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और मन म से निराशा का भाव निकाल देना चाहिए।

क्योकि मानव नश्वर है, पर मानवता अनश्वर है।

१३

विप्लवी भूमि

२२ मई, सन १४९८ ई० ।

यह वह दिन है जब प्रथम यूरोपीय व्यक्ति का भारत मे आगमन हुआ था।

१५वीं सदी म भारत के ऐश्वय की कहानी ने यूरोप वासियो को चकाचौंध मे डाल दिया था। यूरोपवासी समझते थे कि भारत की धरती सोने की है और वहा के कण-कण म सोना समाया है। भारत के इस अतुल ऐश्वय से खिचकर यूरोप के देशो मे भारत पहुचने के समुद्री मार्ग ढूढने की होड मच गई। कोलम्बस भारत का समुद्री माग ही खोजने निकला था, पर वह पहुच गया अमरीका।

अमरीका की खोज का श्रेय भले ही कोलम्बस को मिले पर यूरोप से भारत पहुचने का समुद्री माग जिस व्यक्ति ने सबसे पहले खोजा, वह था पुतगाल निवासी वास्कोडिगामा। वही प्रथम यूरोपीय था जो २२ मई, १४९८ ई० को भारत के पश्चिमी समुद्र तट के कालीकट बन्दरगाह पर उतरा था।

कालीकट के राजा जमोरिन ने भारतीय परम्परा के अनुसार इस नये अतिथि का आदर सत्कार किया। पर इस समादर के बदले, एक सदी से भी कम समय मे इन चतुर व्यापारियो ने मगलोर, कोचीन, श्रीलका और गोवा म अपना पुतगाली झण्डा फहरा दिया।

पुतगाली अपने एक हाथ मे तलवार और दूसरे हाथ मे ईसामसीह की मूर्ति से अकित सलीब लेकर भारत आए थे। जब उन्हे प्रचुर मात्रा मे यहा सोना उपलब्ध होन लगा तो उन्होने सलीब छोडकर दोनो हाथो से सोना बटोरना शुरू कर दिया। आखिर सोना बटोरते बटोरते उनके हाथ इतने थक गए कि उनमे तलवार पकडने की ताकत न रही। तब डचो ने उनको

गई और तब बगाल का स्वातत्र्य-सूर्य ही नही, भारत का भी स्वातत्र्य-सूर्य डूब गया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत की परतत्रता बगाल से प्रारम्भ हुई।

प्लासी की लडाई के तीन साल पहले तक अग्रेज व्यापारी ढाका और मुर्शिदाबाद की सडको पर डरते हुए चला करते थे।

बगाल का शासन भले ही हारा हो, पर जनता नही हारी थी। सन् १७५७ के बाद से ही बगाल की जनता किसी न किसी रूप म अग्रेजो से मुक्ति पाने का प्रयास करती रही।

मीर जाफर बगाल की गद्दी पर अग्रेजो की सहायता से बैठा था, इसलिए उसने ईस्ट इडिया कम्पनी को मासिक भत्ता देना स्वीकार किया। अपने राजमुकुट का मूल्य चुकाने मे उसका सारा राजकोष खाली हो गया, पर अग्रेजो का पावना कभी चुकता नही हो पाया। जब मीर कासिम गद्दी पर बैठा तो अग्रेजो के इस ऋण से मुक्ति पाने के लिए उसने २७ सितम्बर, १७६० को बर्दवान, मिदनापुर और चटगाव की जमीदारी अग्रेजो को दे दी। भारत के इस भाग मे अग्रेजी अधिकार का यही पहला दस्तावेज है।

उस समय इन इलाको मे मराठो का दबदबा था और अग्रेजी शासन का प्रवेश नही हो पाया था। अलीवर्दी खा के जमाने तक बगाल पेशवाओ को चौथ दिया करता था। शाह आलम ने बगाल की दीवानी ईस्ट इडिया कम्पनी को दे दी तो पेशवाओ को चौथ मिलनी बन्द हो गई। तब ईस्ट इडिया कम्पनी ने सन् १७६६ मे निश्चय किया कि जगल महाल मे सेना भेजकर यहा जमीदारो को मालगुजारी देने के लिए बाध्य किया जाए और उनकी सारे किलेबन्दियो को नष्ट कर दिया जाए। परिणामस्वरूप जगल-महाल के इलाके म और आसपास ३००-४०० मील तक विद्रोह की आग भडक उठी।

लेफ्टिनेण्ट फर्ग्युसन इस आग को बुझाने के लिए फौज लेकर जगल महाल पहुचे। प्रदेश के निवासियो पर फौज ने अकथनीय अत्याचार किए। व्यवस्थित और सुसगठित कम्पनी की फौज के सामने जमीदार लोग टिक न सके। वे हार तो गए, पर उन्होने अग्रेजो की अधीनता स्वीकार न की।

वे अपने-अपने महलो और किलो मे आग लगाकर जगलो मे जा छिपे।

इस विद्रोह से पूरी तरह अग्रेज निपट भी नही पाए थे कि उत्तरी और पूर्वी बगाल मे सशस्त्र सन्यासियो और फकीरो का विद्रोह भडक उठा।

साधुओ के विद्रोह की बात सुनने मे विचित्र-सी लग सकती है, पर सम्राट् अकबर के समय से ही सशस्त्र साधुओ के ऐसे गिरोहो की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं, जो राजकीय खजानो को लूट लेते थे। इन सन्यासियो मे हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। कभी-कभी ये अपनी-अपनी जमात के वर्चस्व की खातिर आपस म भी लड पडते थे, पर अक्सर किसी एक या दूसरे राजा की सहायता करके ये उसकी विजय मे सहायक होते थे। इनकी सख्या सैकडो और हजारो तक होती थी, इसलिए जिस राजा को इनका सहयोग मिल जाता, उसकी शक्ति बहुत बढ जाती। एक बार सशस्त्र सन्यासियो के ऐसे ही एक दल ने किसी वृद्धा साध्वी के नेतृत्व मे औरगजेब की शाही सेना से भी टक्कर ली थी जिसमे शाही सेना को मुह की खानी पडी थी।

वकिमचन्द्र के 'देवी चौधरानी' नामक उपन्यास मे भवानी पाठक और देवी चौधरानी की जो चर्चा आती है, वह काल्पनिक नही है, बल्कि वे दोनो इसी प्रकार के साधुओ के एक दल के साथ, जिसका नेता मजनूशाह था, सम्बद्ध थे। इस मजनूशाह को अग्रेजो ने पकडने की बडी कोशिश की, पर वह उनके हाथ नही आया।

इन सन्यासियो का कही निश्चित स्थान नही था। ये उत्तर प्रदेश से लेकर बगाल तक घूमते रहते। अग्रेजो के आगमन के पश्चात्, पूर्वी बगाल इनका विशेष क्रियाक्षेत्र बन गया। इनका हिन्दू और मुस्लिम जनता पर काफी प्रभाव था और जनता तथा बडे-बडे जमीदार रुपया-पैसा, राशन-पानी तथा हरवे-हथियार से इनकी छिप-छिपकर सहायता करते रहते थे।

सन् १७६३ मे इन सन्यासियो ने ईस्ट इडिया कम्पनी की ढाका वाली कोठी पर कब्जा कर लिया। अग्रेज ढाका छोडकर भाग गए। दीनाजपुर, जलपाईगुडी, मैमनसिंह, रगपुर और राजशाही मे इन सन्यासियो की कम्पनी की सेना से अनेक बार मुठभेड हुई। अधिकाश स्थानो पर कम्पनी की सेना हारी, पर कही-कही सन्यासियो की सेना भी परास्त हुई। सन् १७७२ मे

जलपाईगुडी मे सन्यासियो की बडी करारी हार हुई। इस लडाई मे बहुत-से सन्यासी निर्ममतापूर्वक मारे गए। उसीके बाद जलपाईगुडी पर अग्रेजो का आधिपत्य स्थापित हो पाया।

सन्यासियो ने पुन अपनी शक्ति वृद्धि की। लगभग पाच हजार सन्यासियो ने एक बार फिर ढाका पर हमला किया। सन्यासियो के निरन्तर आक्रमणो से पूर्वी बगाल मे ईस्ट इडिया कम्पनी का अस्तित्व ही खतरे म पड गया। इन सन्यासियो का अपना गुप्तचर विभाग भी रहता था जो प्रतिपक्षी दल की समस्त गतिविधियो की जानकारी देता रहता था। सन् १७७६ से सन् १७८६ तक के दस सालो मे कम्पनी की सेना मे और इन सन्यासियो के गिरोहो मे अनेक मुठभेडें होती रही। सन् १७८६ मे मजनूशाह गगा पार करते हुए घोडे से गिरकर मर गया। उसके बाद मजनूशाह के प्रधान शिष्य मदारबख्श, मूसाशाह और भवानी पाठक अधिक दिनो तक सन्यासियो की इस सैन्य शक्ति को कायम नही रख सके। सन् १७९४ के आस-पास सन्यासियो का यह विद्रोह समाप्त हो पाया।

सन्यासियो के विद्रोह का दावानल पूरी तरह शान्त भी नही हो पाया था कि मिदनापुर के जगल महाल इलाके मे चुआड लोग विद्रोह कर बैठे।

चुआडो ने कम्पनी के अधिकारियो को चैन से नही बैठने दिया। जिन जमीदारो की जागीर जब्त हो गई थी वे इस विद्रोह मे प्रमुख सहायक थे। मिदनापुर के सारे जगली प्रदेश पर, जिसमे वीरभूम, बदवान और मानभूम के जिलो के जगली प्रदेश भी शामिल थे, जब पूरी तरह अग्रेजो का कब्जा हो गया, तब उन्होने जगल महाल के नाम से एक अलग महाल बनाया। उन दिनो इस प्रकार के तेईस महाल इस जिले म थे। पर सन १८३३ के बाद यह जिला समाप्त करके इसके इलाके अन्य जिलो मे बाट दिए गए।

चुआडो के विद्रोह से निपटने मे भी अग्रेजो को कई साल लगे। सन् १७९० के आसपास मुगल शासन पूर्वी भारत से समाप्त हो गया था और सारी शक्ति इस्ट इडिया कम्पनी के हाथ म आ चुकी थी पर चुआडो का विद्रोह अभी शान्त नही हुआ था कि मिदनापुर के उत्तरी भाग की अन्य जातियो ने सन् १८०६ म विद्रोह के अग्निकुण्ड की अग्नि प्रदीप्त कर दी। इसे इतिहास मे 'नायको के विद्रोह' की सज्ञा दी गई है।

निर्ममतापूर्वक पशुओं की तरह गोलियों से भून दिया गया और उनकी लाशों को समुद्र में फेंक दिया गया।

अमृतसर का जलियावाला बाग काण्ड सन् १६१६ में हुआ था, किन्तु बगाल की भूमि पर यह मर्मान्तिक रक्तरंजित 'जलियावाला काण्ड' उससे भी लगभग १०० साल पहले सन् १८२४ में हुआ था।

इसे बैरकपुर का प्रथम सैनिक विद्रोह कहा जा सकता है क्योंकि ये सब सैनिक बैरकपुर छावनी के ही थे।

इस काण्ड के आसपास ही चौबीस परगना और फरीदपुर में वहाबियों का विद्रोह प्रारम्भ हो गया। इस विद्रोह का नेता था उत्तर प्रदेश के रायबरेली का सैयद अहमद नामक एक तीर्थयात्री, जिसका भारत के बाहर तुर्की और अरब देशों के मुसलमानों से भी सम्बन्ध था।

जब वारेन हेस्टिंग्स ने रुहेला पठानों को निर्मूल करने के लिए दमन प्रारम्भ किया, तब सैयद अहमद ने उत्तरी भारत और पूर्वी भारत का दौरा किया और मुसलमान शासक जिस तरह प्रादेशिक शासनकर्ता नियुक्त करते थे, उसी तरह उसने अपने चार प्रमुख शिष्यों को प्रधान धर्मगुरु नियुक्त किया। इस सगठन का प्रधान केन्द्र रखा गया पेशावर में और सीमाप्रान्त के पठानों को सगठित करके पजाब के सिख राज्य को ध्वस करने की योजना बनाई गई।

उस समय भारत में जितनी मुस्लिम रियासतें थीं, वे धन-जन से इस वहाबी आन्दोलन की सहायता कर रही थीं। वहाबियों के आन्दोलन से ही राजनीति में साम्प्रदायिकता का समावेश हुआ और हिन्दुओं को लूटना तथा उनकी हत्या करना पुण्य का कार्य समझा जाने लगा। इससे पहले के विद्रोह में साम्प्रदायिकता का अश नहीं था, या था भी तो इतना नगण्य कि वह सामने नहीं आता था। पर वहाबी आन्दोलन ने इस्लाम की आड में अंग्रेज-विरोध के साथ हिन्दुत्व-विरोध को भी अपना लक्ष्य बना लिया।

वहाबियों के इस आन्दोलन में मियां तीतू मीर का नाम स्मरणीय है। वह बगला देश के चादपुर का निवासी था। उसका असली नाम था निसार अली। पेशेवर पहलवान के रूप में वह विख्यात था। वह अच्छा मुक्केबाज और लठैत भी था। जब तीतू मियां मक्का गए, तब उनकी मुलाकात सैयद अहमद से हुई और तब से तीतू मियां ने पूर्वी बगाल में वहाबी आन्दोलन की

निर्ममतापूर्वक पशुओ की तरह गोलियो से भून दिया गया और उनकी लाशो को समुद्र मे फेंक दिया गया।

अमृतसर का जलियावाला बाग काण्ड सन् १६१६ मे हुआ था, किन्तु बगाल की भूमि पर यह मर्मान्तिक रक्तरंजित 'जलियावाला काण्ड' उससे भी लगभग १०० साल पहले सन् १८२४ मे हुआ था।

इसे बैरकपुर का प्रथम सैनिक विद्रोह कहा जा सकता है क्योकि ये सब सैनिक बैरकपुर छावनी के ही थे।

इस काण्ड के आसपास ही चौबीस परगना और फरीदपुर मे वहाबियो का विद्रोह प्रारम्भ हो गया। इस विद्रोह का नेता था उत्तर प्रदेश के रायबरेली का सैयद अहमद नामक एक तीर्थयात्री, जिसका भारत के बाहर तुर्की और अरब देशो के मुसलमानो से भी सम्बन्ध था।

जब वारेन हेस्टिंग्स ने रुहेला पठानो को निर्मूल करने के लिए दमन प्रारम्भ किया, तब सैयद अहमद ने उत्तरी भारत और पूर्वी भारत का दौरा किया और मुसलमान शासक जिस तरह प्रादेशिक शासनकर्ता नियुक्त करते थे, उसी तरह उसने अपने चार प्रमुख शिष्यो को प्रधान धर्मगुरु नियुक्त किया। इस सगठन का प्रधान केन्द्र रखा गया पेशावर मे और सीमाप्रान्त के पठानो को सगठित करके पजाब के सिख राज्य को ध्वस करने की योजना बनाई गई।

उस समय भारत में जितनी मुस्लिम रियासतें थी, वे धन-जन से इस वहाबी आन्दोलन की सहायता कर रही थी। वहाबियो के आन्दोलन से ही राजनीति मे साम्प्रदायिकता का समावेश हुआ और हिन्दुओ को लूटना तथा उनकी हत्या करना पुण्य का कार्य समझा जाने लगा। इससे पहले के विद्रोह मे साम्प्रदायिकता का अश नही था, या था भी तो इतना नगण्य कि वह सामने नही आता था। पर वहाबी आन्दोलन ने इस्लाम की आड मे अग्रेज-विरोध के साथ हिन्दुत्व-विरोध को भी अपना लक्ष्य बना लिया।

वहाबियो के इस आन्दोलन मे मिया तीतू मीर का नाम स्मरणीय है। वह बगला देश के चादपुर का निवासी था। उसका असली नाम था निसार अली। पेशेवर पहलवान के रूप मे वह विख्यात था। वह अच्छा मुक्केबाज और लठैत भी था। जब तीतू मिया मक्का गए, तब उनकी मुलाकात सैयद अहमद से हुई और तब से तीतू मिया ने पूर्वी बगाल मे वहाबी आन्दोलन की

नायक लोग मुर्गो का मास खाते थे, पर गौ-ब्राह्मण मे भक्ति रखते थे। उन जागीरो से इनका गुजारा होता था जो बगडी के राजाओ द्वारा इनको सेवा के पुरस्कार स्वरूप इनको प्रदान की जाती थी। जब अंग्रेजो ने बगडी के राजा छत्रसिंह को गद्दी से उतारकर उसका राज्य अपने समर्थक व्यक्ति को सौंप दिया तो नायको की जागीरें छीन ली गई।

छत्रसिंह के पतन के बाद इन नायको का नेता बना अचलसिंह जिसने जगलो मे शरण लेकर अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध विद्रोह सगठित किया। एक बार फिर कम्पनी का अस्तित्व सकट मे पड गया। मराठे और राजपूत सैनिको ने अचलसिंह का साथ दिया। अचलसिंह को पकडने के सब आयोजन विफल हुए। अन्त मे अपने ही किसी साथी के विश्वासघात से अचलसिंह पकडा गया। वीर अचलसिंह के बाद अनेक नेताओ ने नायक-विद्रोह की बागडोर सभाली। सन् १८१६ मे अंग्रेजो ने नायक विद्रोह को पूरी तरह समाप्त करने के लिए उनके केन्द्र को आग लगा दी और सवा दो सौ आदमियो को विद्रोह का आरोप लगाकर खुले आम फासी पर लटका दिया।

नायक विद्रोह के अन्तिम चरण म लार्ड एमहर्स्ट के समय एक महत्वपूर्ण घटना घटी।

दूसरा बर्मा-युद्ध चल रहा था। भारत की अंग्रेजी सरकार ने बर्मा निवासियो के प्रबल प्रतिरोध का सामना करने के लिए चटगाव से भारतीय सैनिको को बर्मा भेजने का निश्चय किया। समुद्री मार्ग से भेजने पर खतरा था, इसलिए स्थल मार्ग चुना गया। उस समय सवारी का अन्य कोई साधन न होने से सैनिक को बैलो की पीठ पर जाने के लिए कहा गया। सैनिक अधिकाश अशिक्षित देहाती हिन्दू थे। इससे उनकी धार्मिक भावना को और जन्मजात सस्कार को ठेस लगी। उनके लिए बैल शिवजी के वाहन नन्दी का प्रतीक था। उन्होने जाने से इन्कार कर दिया। प्रात कालीन कवायद के समय जब अंग्रेज कप्तान कार्टराइट ने पूछा—कि बर्मा जाने के आदेश को मानना चाहते हैं या नही, तो सब सैनिको ने दृढतापूर्वक अपनी अनिच्छा व्यक्त कर दी।

इसके तुरन्त बाद उनके हथियार छीन लिए गए और क्रोधोन्मत्त अंग्रेज सेनापति के आदेश से लगभग ७०० सैनिको को एक पक्ति म खडा करके

निर्ममतापूर्वक पशुओ की तरह गोलियो से भून दिया गया और उनकी लाशो को समुद्र मे फेंक दिया गया।

अमृतसर का जलियावाला बाग काण्ड सन् १६१६ मे हुआ था, किन्तु बगाल की भूमि पर यह मर्मान्तिक रक्तरंजित 'जलियावाला काण्ड' उससे भी लगभग १०० साल पहले सन् १८२४ मे हुआ था।

इसे बैरकपुर का प्रथम सैनिक विद्रोह कहा जा सकता है क्योकि ये सब सैनिक बैरकपुर छावनी के ही थे।

इस काण्ड के आसपास ही चौबीस परगना और फरीदपुर मे वहाबियो का विद्रोह प्रारम्भ हो गया। इस विद्रोह का नेता था उत्तर प्रदेश के रायबरेली का सैयद अहमद नामक एक तीर्थयात्री, जिसका भारत के बाहर तुर्की और अरब देशो के मुसलमानो से भी सम्बन्ध था।

जब वारेन हेस्टिंग्स ने रुहेला पठानो को निर्मूल करने के लिए दमन प्रारम्भ किया, तब सैयद अहमद ने उत्तरी भारत और पूर्वी भारत का दौरा किया और मुसलमान शासक जिस तरह प्रादेशिक शासनकर्ता नियुक्त करते थे, उसी तरह उसने अपने चार प्रमुख शिष्यो को प्रधान धर्मगुरु नियुक्त किया। इस सगठन का प्रधान केन्द्र रखा गया पेशावर मे और सीमाप्रान्त के पठानों को सगठित करके पजाब के सिख राज्य को ध्वस करने की योजना बनाई गई।

उस समय भारत मे जितनी मुस्लिम रियासतें थी, वे धन-जन से इस वहाबी आन्दोलन की सहायता कर रही थी। वहाबियों के आन्दोलन से ही राजनीति मे साम्प्रदायिकता का समावेश हुआ और हिन्दुओ को लूटना तथा उनकी हत्या करना पुण्य का कार्य समझा जाने लगा। इससे पहले के विद्रोह मे साम्प्रदायिकता का अश नही था, या था भी तो इतना नगण्य कि वह सामने नही आता था। पर वहाबी आन्दोलन ने इस्लाम की आड मे अंग्रेज-विरोध के साथ हिन्दुत्व-विरोध को भी अपना लक्ष्य बना लिया।

वहाबियो के इस आन्दोलन म मिया तीतू मीर का नाम स्मरणीय है। यह बगला देश के चांदपुर का निवासी था। उसका असली नाम था निसार अली। पेशेवर पहलवान के रूप मे वह विख्यात था। वह अच्छा मुक्केबाज और लठैत भी था। जब तीतू मिया मक्का गए, तब उनकी मुलाकात सैयद अहमद से हुई और तब से तीतू मिया ने पूर्वी बगाल मे वहाबी आन्दोलन की

जड जमाने के लिए अपने आपको अर्पित कर दिया।

तीतू मिया ने अपने तीन चार हजार अनुयायी तैयार कर लिए और उन्होंने नदिया, फरीदपुर और चौबीस परगना से अग्रेजो के शासन की समाप्ति की घोषणा कर दी।

१४ नवम्बर, सन् १८३१ को कलकत्ता से कम्पनी की फौज भेजी गई। १७ नवम्बर को फौज की एक और टुकडी भेजी गई। पर तीतू मिया के जोशीले जवानो के सामने अग्रेजी सेना को पीछे हटना पडा। बाद मे अग्रेजो ने और बडी सेना भेजी। तीतू मरते दम तक लडते रहे। अन्त मे उनके अनुयायी पराजित होकर भाग खडे हुए। इस युद्ध मे तीतू मिया के साढे तीन सौ वहाबी सैनिक बन्दी हुए।

उसके बाद भी वहाबी सैनिक अग्रेजो से छिट पुट मुठभेडो म उलझते रहे किन्तु उन्हे कही सफलता नही मिली। धीरे-धीरे सरकार का उनकी गुप्त योजनाओ का पता लग गया। अग्रजो ने देखा कि आम मुस्लिम जनता की सहानुभूति इस आन्दोलन के साथ है इसलिए उसने लडाई झगडे का रास्ता छोडकर साम दाम का रास्ता अपनाया और इस तरह उन्हे अपने वश मे करने की सोची।

बाद म अग्रेजो की यही नीति मुस्लिम लीगी नेताओ के साथ भी खूब कारगर हुई।

सन १८५४ के प्रारम्भ मे कम्पनी के अत्याचार और कुशासन से तग आकर सथालो ने प्रतिकार किया। सथालो के जातीय प्रतीक शाल वृक्ष की टहनी लेकर सथालो के दूत गाव गाव जाकर भावी विद्रोह का शख फूकने लगे। अन्त म ३० जून, १८५५ ई० को तीस हजार सथाल धनुषबाण और भाले हाथ मे लेकर कलकत्ता की ओर चल पडे।

उनका उद्देश्य शान्तिपूण उपायो से अपनी माग अधिकारियो तक पहुचाना भर ही था। वे अपनी पत्नी-पुत्रो आदि पूरे परिवार के साथ जलूस बनाकर चल रहे थ और उनके आगे आगे मादल और ढाक बजते जा रहे थे। परन्तु उनक जलूस को बीच म रोक दिया गया तो उनके शान्तिपूर्ण आन्दोलन का रुख बदल गया।

इसके साथ ही दो सथाल विद्रोही नताओ पर चोरी का आरोप लगा-

कर उन्हें बन्दी बनाया गया, तो सथाल भडक उठे और उनका जगलीपन जाग उठा। उन्होंने लूटमार और बस्तियो को जलाना प्रारम्भ कर दिया। उसके बाद अग्रेजी फौज ने सथालो की बस्तियो को घेरकर उनमे आग लगा दी। उन्हे आत्मसमर्पण करने के लिए कहा गया और जिन्होने आत्म-समर्पण नही किया उन्हे गोलियो से भून दिया गया। इसे सथालो का सीधा हत्याकाण्ड ही कहा जा सकता है।

सथालो का विद्रोह लगभग ६ मास तक चला। अन्त मे कम्पनी के अधिकारियो को अक्ल आई। अब तक वे सथालो से केवल कर ही वसूल करते थे, किन्तु सथालो की सुख-सुविधा की वे परवाह नही करते थे। किन्तु इसके बाद उनकी सुख-सुविधाओ की तरफ भी ध्यान दिया जाने लगा। इस छह महीने के विद्रोह मे अग्रेजो को जितना धन व्यय करना पडा, वह दस वर्ष के शासन-व्यय से अधिक था।

सन् १७५७ मे लार्ड क्लाइव ने षड्यन्त्र करके प्लासी के मैदान मे युद्ध जीता था। उसके बाद के सौ वर्षों का इतिहास अग्रेजो की साम्राज्य-लिप्सा और अर्थ-लिप्सा का इतिहास है।

२३ जून, १८५७ को प्लासी की लडाई को सौ वर्ष पूरे होने थे। तभी इस शतवार्षिकी के उपलक्ष्य मे भारत मे सर्वत्र एक ही दिन विद्रोह का झण्डा बुलन्द करने का निश्चय किया गया। एक छावनी से दूसरी छावनी तक लाल कमल भेजा गया। उस समय यूरोप मे अग्रेजो की रूस के साथ लडाई चल रही थी, इसलिए भारत मे अधिक अग्रेज सेना रखना सम्भव नही था। देसी सैनिको की सख्या उस समय दो लाख १५ हजार थी। इसलिए भारतवासियो ने सोचा कि एक साथ सभी जगह लडाई शुरू करने से हमारी जीत निश्चित है। जून का महीना भी इस विद्रोह के लिए उपयुक्त था, क्योकि उत्तर भारत मे उस समय भयकर गर्मी पडती है और ब्रिटेन जैसे ठडे मुल्क से आने के कारण अग्रेजो के लिए वह गर्मी असह्य होती।

१८५७ का यह विद्रोह कितना व्यापक था, इसके विस्तार मे जाने की आवश्यकता नही। किन्तु इस विद्रोह से अग्रेजो को सरकारी खजानो के लूटे जाने, कर वसूली न होने और विद्रोह को दबाने के लिए अतिरिक्त कर्ज लेने के कारण लगभग २५ करोड रुपये की हानि हुई थी और लगभग

दो लाख भारतवासियो ने इस सग्राम मे अपने प्राण दिए थे। इस विद्रोह के दिनो म अग्रेज़ो मे प्रतिशोध-भावना इतनी प्रबल थी कि उनके दिमाग पर खूनी नशा छा गया था। सैकडो देसी सैनिको को बिना मुकदमा चलाए फासी पर चढा दिया गया था, सैकडो गाव जला दिए गए थे और निर्दोष स्त्री-पुरुषो को बिना शिशु और वृद्ध का ख्याल किये अमानवीय रूप से कत्ल किया गया था। अग्रेज़ो के उन अत्याचारो की मिसाल इतिहास म अन्यत्र मिलनी मुश्किल है।

यह सब वर्णन करने का तात्पर्य इतना ही है कि जिस दिन से अग्रेज़ा न इस देश को धरती पर पाव रखा था, उसी दिन स वहा उनके विरुद्ध एक के बाद एक विद्रोह पनपता रहा और बगाल का यह पूर्वी भाग उन विद्रोहो की विशेष क्रीडास्थली बना रहा। होता भी क्यो न। आखिर भारत के गले मे पराधीनता का पट्टा भी तो प्लासी की पराजय ने ही पहनाया था इसलिए इस कलक को धाने का दायित्व भी सबसे अधिक इसी भूभाग का था।

गदर ने यूरोपियो के प्रति भारतीयो के मन मे घृणा का भाव और उग्र कर दिया। इधर जब भारतीय लोग शिक्षा के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा से अधिकाधिक कीर्ति अर्जित करने लगे तब यूरोपीय लोग भी उनसे खिंचे-खिंचे-से रहने लगे। बगाली लोग शिक्षा के क्षेत्र मे अधिक आगे बढे, तो शासनाधिकारियो की नजर भी उनकी तरफ ही अधिक टेढी रही।

जब सुरेन्द्र नाथ बनर्जी को सिविल सर्विस से निकाल दिया गया और इगलैंड मे अग्रेज़ो ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया तो समस्त भारत का शिक्षित समुदाय विक्षुब्ध हो उठा। उनकी शक्ति सगठन के नये-नये रास्ते ढूढने लगी।

इस राष्ट्रीय भावना को जगाने मे बकिमचन्द्र चटर्जी का अभूतपूर्व स्थान है। चटगाव उनकी जन्मभूमि थी। सन् १८७२ मे उन्होंने 'बगदर्शन' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया और चार साल तक उसका सम्पादन करते हुए उन्होने बगालियो की मोहनिद्रा भग कर दी। सन् १८८२ म 'आनन्दमठ' प्रकाशित हुआ जिसम 'वन्देमातरम्' के गीत ने भारतीयो की धमनियो म

नये रक्त का सचार कर दिया । तब जैसे भारत के राष्ट्रीय जीवन मे चेतना का नया ज्वार आ गया ।

इस तरह धीरे धीरे जिस नवीन बगाल का उदय हो रहा था उसमे बकिम का योग तो था ही, ब्राह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय, और शिवनाथ शास्त्री तथा द्वारकानाथ गगोपाध्याय जैसे उनके तरुण कार्यकर्ताओ का भी कम योग नही था । उत्तर भारत मे क्रान्ति के अग्निमत्र की जो दीक्षा आर्यसमाज ने दी, पूर्वी भारत म वही दीक्षा ब्राह्मसमाज ने दी । उस समय जितने भी शिक्षित और प्रबुद्ध बगाली थे वे सब ब्राह्मसमाज से प्रभावित थे । विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का परिवार भी उन्ही प्रगतिशील लोगो मे था ।

ठाकुर परिवार के उत्साही किशोरो ने एक गुप्त सगठन कायम किया था जिसे रहस्यमय बनाए रखने के लिए उसका नाम रखा गया था हम-चुपामूहाफ' । इस सगठन के जो अनेक नियम थे उनमे प्रधान था मत्रगुप्ति—अर्थात् इस सगठन मे जो भी कुछ कहा जाएगा या सुना जाएगा या किया जाएगा, उसे बाहर कभी प्रकट नही किया जाएगा ।

सगठन की जब बैठक होती, तब मेज के दोनो किनारो पर मुर्दे की खोपडी रखी जाती, उसकी आखो के गड्ढे मे दो ममोबत्तिया जलाई जाती । मुर्दे की खोपडी मृत भारत की प्रतीक थी और दोनो मोमबत्तियो को जलाने का अभिप्राय यह था कि मृत भारत मे प्राण सचार करके उसके ज्ञान के नेत्र उन्मीलित करने होगे । इस व्यवस्था के पीछे यही मूल कल्पना थी ।

इस गुप्त सगठन की कारवाई एक गुप्त भाषा म लिखी जाती । यह गुप्त भाषा भी ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर की ही तैयार की हुई थी ।

इस प्रकार के गुप्त सगठन केवल बगाल मे ही नही, सारे भारत के शिक्षित समुदाय मे लोकप्रिय होने लगे और बाद मे जो क्रान्तिकारियो के सगठन तैयार हुए उन्हे इसी प्रकार के सगठनो से प्रेरणा मिली ।

ठाकुर भवन मे जिस गुप्त समिति का जन्म हुआ, बाद मे उसम बैरिस्टर प्रमथनाथ मित्र, अरविन्द घोष और देशबन्धु चितरजनदास भी शामिल हो गए और सन् १९०२ म इसका नाम अनुशीलन समिति' पड गया । यह 'अनुशीलन' शब्द बकिम के ही एक लेख स लिया गया था ।

इसीकी देखादेखी 'ग्रामोन्नति समिति' और 'शरीर विकास समिति' की भी स्थापना हुई। इस प्रकार की सब समितियो का उद्देश्य एक ऐसा समाज तैयार करना था जिसका प्रत्येक सदस्य स्वस्थ, सदाचारी, नीरोग, और अग्रेजो को देश से बाहर भगा देने के लिए क्रियाशील हो, क्योकि भारतीय उस समय यह जान गए थे कि इन गुणो के बिना हम अग्रेजो को नही भगा सकेंगे।

इधर बगाल मे जब अग्निमत्र की दीक्षा के लिए युवक इस प्रकार साधनारत थे, तब उधर महाराष्ट्र मे चाफेकर बन्धुओ ने वीर वासुदेव बलवन्त फडके के विद्रोहात्मक कार्यों से प्रेरित होकर पूना मे 'चाफेकर सघ' की स्थापना की, सावरकर भाइयो ने अनुशीलन समिति की तरह 'अभिनव भारत समिति' की स्थापना की और आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के पट्टशिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा ने स्वातंत्र्य-सघर्ष मे विजय के लिए विदेशो मे जाकर अग्निमंत्र की साधना की।

बंगाल भारत के पूर्व मे है और महाराष्ट्र भारत के पश्चिम मे है। क्रान्ति की आराधना के लिए भारत के इन दोनो भागो मे जिस प्रकार एक साथ ही प्रयत्न प्रारम्भ हुए, वह भी आश्चर्यजनक है। महाराष्ट्र के ही एक युवा क्रान्तिकारी, शिवाजी के परमभक्त, मराठा ब्राह्मण, सखाराम गणेश देवस्कर ने देवघर मे आकर वहा के जगलो मे युवको को युद्धाभ्यास के लिए भी प्रेरित किया। पहाड के एक ओर शिवाजी के मवाली सैनिक रहते और दूसरी ओर मुगल सैनिक, और दोनो दल सेनाओ के युद्ध का अभिनय करते।

अनुशीलन समिति का एक सुसंगठित केन्द्र ढाका मे भी था। वहा प्रतिवर्ष खेलकूद की प्रतियोगिताए होती और नकली लडाई का अभिनय होता। बडे-बडे हाकिम भी इस नकली लडाई को देखने आते। इस लडाई मे सैकडो युवक शामिल होते। उनके हाथ मे छोटी-बडी लाठिया होती। दोनो प्रतिपक्षी दलो के झण्डे ऊचे पेडो पर टाग दिए जाते। जो दूसरे पक्ष का झण्डा छीन लाता, वह दल विजयी माना जाता। इस नकली लडाई मे बहुत-से लोग घायल भी हो जाते और उन्हे एम्बुलेंस मे डालकर अस्पताल पहुचाया जाता। हर लाठी मे लाल रग पुता होता था। जिसके कपडे मे

वह रग लग जाता वह घायल समझा जाता और उसे एक तरफ बैठ जाना पड़ता। उससे कोई लड़ नही सकता था और एम्बुलेंस आकर उसे अस्पताल ले जाती।

समिति के सदस्यो मे सामरिक अनुशासन पर बल दिया जाता और उस अनुशासन को भग करने वाले का बाकायदा कोर्ट मार्शल होता। समिति के प्रत्येक सदस्य को (क) आद्य प्रतिज्ञा, (ख) अन्त्य प्रतिज्ञा, (ग) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा, (घ) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा ग्रहण करनी पड़ती और इन प्रतिज्ञाओ के हिसाब से ही समिति मे वरिष्ठता का क्रम चलता। प्रत्येक प्रतिज्ञा 'ओ३म् वन्देमातरम्' से प्रारम्भ होकर परमेश्वर, अग्नि, माता, गुरुदेव और नेता को साक्षी मानकर की जाती। ये प्रतिज्ञाए उत्तरोत्तर कठोर से कठोर होती जाती और अन्तत देशप्रेम की वेदी पर सर्वस्व होमने की साधना मे चरितार्थ होती।

ढाका के रेसकोर्स मैदान मे बना सिद्धेश्वरी का कालीवाडी मन्दिर—जिसे सन् ७१ मे पाकिस्तानी सेना ने बुलडोजर चलाकर समतल कर दिया, इसी प्रकार के क्रान्तिवीर तरुणो का दीक्षास्थान था। हर साल दुर्गापूजा से एक दिन पहले इस मन्दिर मे युवक एकत्र होते और प्रत्यालीढ आसन मे बैठकर मस्तक पर तलवार और गीता धारण कर दुर्गा की प्रतिमा के सामने भारत को स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा करते। प्रत्यालीढ आसन उस पोज का प्रतीक है जो सिंह द्वारा शिकार पर झपट्टा मारने से पहले ग्रहण किया जाता है।

जिन दिनो बगाल मे विभिन्न स्थानो पर इस प्रकार गुप्त समितिया पनप रही थी, उन्ही दिनों लार्ड कर्जन ने १६ अक्तूबर, १९०५ को बगाल का विभाजन कर दिया। इससे बगालियो के तन-बदन मे आग लग गई। देखते-देखते महाराष्ट्र और पजाब मे भी इस अपमान के प्रतिशोध की आग भड़क उठी।

तभी चारों तरफ विलायती वस्तुओ के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओ के ग्रहण के आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। तब तक महात्मा गाधी का मच पर आगमन नही हुआ था। उस समय द्विजेन्द्रलाल राय के गीतो ने और अरविन्द घोष तथा उपाध्याय ब्रह्मबान्धव के लेखो ने आग उगलनी शुरू कर

दी। अंग्रेजो ने हिन्दुओ और मुसलमानो मे फूट डालने की बडी कोशिश की, पर उस समय के स्वदेशी आन्दोलन मे पूर्वी बगाल के मुसलमानो ने भी खूब बढ-चढकर भाग लिया। सब विशिष्ट मुस्लिम नेता तथा ढाका के नवाब अकातुल्ला बहादुर भी स्वदेशी आन्दोलन के साथ थे।

उस समय रवीन्द्रनाथ ने दोनो वगो को मिलाने के लिए राखी बन्धन का मिलन मंत्र दिया—हरेक बगाली एक-दूसरे को राखी बाधता। रवीन्द्र द्वारा रचित 'राखी सगीत' हजारो कठो से ध्वनित हो उठा।

स्वदेशी आन्दोलन ने सबसे अधिक जोर पकडा जिला बारीसाल म। अंग्रेजो ने उसे 'कानून तोडने वाला जिला' घोषित कर दिया। सन् १९०६ मे १४ और १५ अप्रैल का बारीसाल मे वगीय प्रादेशिक सम्मेलन का आयोजन किया गया था, पर उसपर अंग्रेजो ने प्रतिबन्ध लगा दिया। साथ ही 'वन्देमातरम्' के उच्चारण पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस निषेधाज्ञा की अवहेलना करके वन्देमातरम् का उच्चारण करने वाले युवको को कोडे लगाए गए थे।

जब ४ जुलाई, सन् १९०२ को स्वामी विवेकानन्द इस धराधाम को त्याग कर चले गए तब एक रोमन कैथोलिक पादरी उनके अन्त्येष्टि सस्कार मे शामिल होने के लिए वेलूड मठ पहुचा। उस पादरी को वही कुछ ऐसी आन्तरिक प्रेरणा मिली कि उसने पुन हिन्दुत्व की दीक्षा ले ली और स्वामी विवेकानन्द के फिरगी-विजय के व्रत को पूरा करने का सकल्प किया। इस पादरी का ही नाम था उपाध्याय ब्रह्मबान्धव। ये भी स्वामी विवेकानन्द के समान ही तेजस्वी और शक्तिमान पुरुष थे। पहले ये ईसाई धर्म से प्रभावित होकर ईसाई बने थे। पादरी बनकर यूरोप की यात्रा की थी। पर स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु ने इनकी काया पलट कर दी। वे वापस हिन्दू बने और स्वामी विवेकानन्द के मिशन को पूरा करने मे जुट गए।

इस आजीवन बाल ब्रह्मचारी पर अन्त मे राजद्रोह का अभियोग चला, पर वह अंग्रेजो की जेल म जाने से पहल इस शरीर की जेल से ही मुक्त हो गया।

यह 'सन्ध्या', 'युगान्तर' और 'वन्देमातरम्' का युग था—इन तीनों पत्रो ने वगाली जनता को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्ति का आश्रय

लेने के लिए तैयार किया था ।

अनुशीलन समिति का जैसा गढ ढाका और चटगाव था वैसा ही गढ रगपुर भी था । रगपुर मे अरविन्द घोष कई साल तक रहे थे । रगपुर मे ही भारत मे निर्मित बम का पहली बार परीक्षण हुआ था और उस परीक्षा म प्रफुल्ल चक्रवर्ती का निधन हो गया था ।

अनुशीलन समिति के प्रमुख सदस्य हेमचन्द्र कानूनगो अपनी सब जमीन-जायदाद बेचकर स्वेच्छा से पेरिस गए और वहा उन्होने श्यामजी कृष्ण वमा की सहायता से बम बनाना सीखा । पेरिस म ही इस काम के लिए प्रयोगशाला बनाई गई और श्यामजी ने इसका सारा खच दिया था ।

बीसवी सदी के प्रथम दशक के आसपास अनुशीलन समिति क प्रमुख केन्द्र पूर्वी बगाल मे ही थे और ढाका, चटगाव रगपुर, फरीदपुर खुलना, जैसोर, कोमिल्ला और कुष्टिया म क्रान्तिकारियो की शस्त्रास्त्र सग्रह सबधी गतिविधिया जारी थी । रगपुर के ईशान चक्रवर्ती वहा के जिला मजिस्ट्रेट के पेशकार थे और उन्होने क्रान्तिकारियो को उनके काय मे सहायता के लिए ८० हजार रुपये दिए थे । साथ ही अपने दो पुत्र भी क्रान्तिकारियो को सौंप दिए थे ।

किंग्सफोड नामक एक अग्रेज न्यायाधीश ने १६ वप के किशोर सुशील कुमार को हाथ पैर बधवा कर कोडे लगवाए, क्योकि उसने एक अग्रेज घुडसवार पुलिस कर्मचारी को उसके दुर्व्यवहार पर घूसा मार दिया था । उसके बाद किंग्सफोड को 'कसाई काजी' कहा जाने लगा और क्रान्तिकारी उससे बदला लेने की ताक मे रहने लगे ।

तब किंग्सफोड की सुरक्षा के लिए उन्हे बगाल मे बाहर भज दिया गया । वे बिहार के मुजफ्फरपुर म जिला और सेशन जज बने । पर इस अत्याचारी जज का बगाल के क्रान्तिकारियो ने पीछा नही छोडा । अरविन्द घोष के भाई वरीन्द्र घोष के परामश से खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को किंग्सफोड की हत्या के लिए भजा गया । इन दोनो युवको ने किंग्सफोर्ड की गाडी समझकर जिस गाडी पर बम फेंका, उसम किंग्सफोड नही था । गाडी का एक हिस्सा चूर चूर हो गया पर किंग्सफोड बच गया । खुदीराम और प्रफुल्ल दोना पकड गए । प्रफुल्ल ने आत्महत्या कर ली और खुदीराम

को प्राणदण्ड मिला । उन दिनो क्रान्तिकारियों ने अनेक अत्याचारी अंग्रेजो की और सरकारी गवाहो की हत्या करके उन्हे सबक सिखाया था।

अरविन्द घोष अलीपुर बम काण्ड म गिरफ्तार हुए । बैरिस्टर विपिनचन्द्र पाल ने उनके केस की पैरवी की। अरविन्द छूट गए । और उसके बाद वे चदन नगर होते हुए पाण्डीचेरी चले गए जहा उन्होने बाद मे अपना सारा जीवन योगसाधना म लगा दिया।

अरविन्द घोष का आज भी बगला देश के बुद्धिजीवियो पर कितना असर है, इसकी चर्चा एक पृथक अध्याय मे आ चुकी है ।

अनुशीलन दल की देखादेखी पूर्वी बगाल म क्रान्तिकारियो के और भी अनेक दल तैयार हो गए। वे प्राय राजनैतिक डकैतिया डालकर दल के लिए धनसग्रह किया करते थे। ऐसे दलो की सख्या बढ़ जाने पर डकैतियो की सख्या भी बढ गई और उन दलो की आपसी गुटबन्दिया भी बढ गईं।

डकैतियो और आपसी राजनीतिक गुटबन्दियो की यही परम्परा बगला देश को विरासत म मिली है।

२३ दिसम्बर, १९१२ ई० को क्रान्तिकारियो के इतिहास मे एक बेजोड घटना घटी जब दिल्ली के चादनी चौक मे लाड हार्डिंज के जलूस पर बम फेंका गया। जब यह जलूस चादनी चौक मे घटाघर से लालकिले की तरफ जा रहा था, तब पजाब नेशनल बैंक की इमारत की दूसरी मजिल स किसी ने बड लाट पर बम फेंका, जिससे उन्हे मामूली चोट तो आई, पर वे बाल बाल बच गए। इससे सारे ब्रिटिश साम्राज्य मे तहलका मच गया ।

किसने फेंका था यह बम ?

इस सारे काण्ड की योजना के मूल सूत्रधार तो रासबिहारी बोस थे जो बाद म जापान चले गए, पर बम फेंकने वाला हाथ किसका था, इसपर स्वय क्रान्तिकारियो म भी बडा विवाद है।

अभी पिछले दिनो दिल्ली के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हनुमन्त सहाय का स्वर्गवास हुआ है। उनके स्वर्गवास के पश्चात उनके सम्बन्ध म लिख गए सस्मरणो म यह बात बार-बार जोर देकर कही गई कि लाड हार्डिंज पर बम फेंकने वाला कौन था, यह रहस्य केवल लाला हनुमन्त सहाय ही जानते थे और उन्होने मरते दम तक इस रहस्य पर से पर्दा नही उठाया।

पर हिन्दी के एक वरिष्ठ पत्रकार और क्रान्तिकारियो के इतिहास के सतक अध्येता श्री तारिणी बावू[1] का कहना है कि वह व्यक्ति था वसन्त विश्वास, जो नदिया जिले के पोडागाछ नामक गाव का निवासी था और मन्मथ विश्वास का भाई था। इस वसन्त विश्वास ने ही औरत के वेश मे वह बम फेंका था।

इस घटना के तुरन्त वाद वसन्त विश्वास लाहौर चल गए और रास-विहारी बोस अपने कार्यस्थान देहरादून पहुच गए। पुलिस अपनी सारी ताकत लगाकर भी घटना के नायक को पकड नही सकी।

सत्य क्या है यह शायद सदा ही रहस्य बना रहेगा, क्योकि उस घटना से सम्बद्ध प्रामाणिक व्यक्ति अब शायद ही कोई जीवित बचा हो।

मैंने इस घटना का इस कारण उल्लेख किया है कि प्राप्त विवरण के अनुसार इतनी महत्त्वपूर्ण घटना म भी मुख्य हाथ वगभूमि के ही एक वीर सपूत का था।

इससे पूव दिसम्बर, १९११ म सम्राट् पचम जार्ज भारत आए। क्रान्तिकारियो के आन्दोलन स बाधित होकर उन्होने वगभग को रदद करने की घोषणा की और भारत की राजधानी भी कलकत्ता से दिल्ली आ गई।

तब तक बगाल क क्रान्तिकारी अनेक टुकडियो मे बट चुके थे। हर जिले म दो-दो, तीन-तीन दल बन गए थे। जो नेता जेलो म जाने से बच गए थे, उनम कायपद्धति और नेतृत्व के आदर्शों के प्रति मतैक्य नही था। अनुशीलन समिति के कई लोग सम्राट पचम जार्ज के आगमन के उपलक्ष्य म कोई बडा क्रान्तिकारी कार्य करक सब दलों को एकत्र करना चाहते थे। पर दलो म आपसी वैमनस्य इतना था कि वे इस प्रकार की किसी योजना पर भी सहमत नही हो सके।

तब क्रान्तिकारियो से सहानुभूति रखनेवाले राष्ट्रीय नेताओ ने सलाह दी कि अब क्रान्तिकारियो की शक्ति को सगठित करने का एकमात्र उपाय यही है कि हिंसात्मक कार्यों को सर्वथा स्थगित कर दिया जाए और जनता

---

१ भारत मे सशस्त्र क्रान्ति की भूमिका' (पृष्ठ २३०)—ले० तारिणीशकर चक्रवर्ती। इस अध्याय की सामग्री म उक्त पुस्तक से अच्छी सहायता मिली है जिसके लिए लेखक तारिणी बाबू का आभारी है।

की सेवा मे सारी शक्ति लगा दी जाए।

सन् १७५७ ई० के पश्चात् सन् १९१२ तक के डेढ सौ साल की अवधि में अंग्रेजो की सत्ता को उखाड फेंकने के लिए जैसा निरन्तर सशस्त्र सघर्ष इस देश मे हुआ, उसकी मिसाल और कही नही मिलेगी।

उसके बाद सशस्त्र सघर्ष कुछ समय के लिए रुक गया।

महात्मा गाधी के आने के बाद सन् १९१९ से अहिंसात्मक सत्याग्रह का बोलबाला हो गया। कितने ही क्रान्तिकारी उसमे शामिल हो गए। परन्तु जब एक साल के अन्दर महात्मा जी के वचनानुसार स्वराज्य नही मिला तो क्रान्तिकारियो ने पुन हथियार उठा लिए। परिणामस्वरूप काकोरी षड्यत्र, लाहौर षड्यत्र, और वाराणसी षड्यन्त्र के नेताओ की बलिदानी गाथाए सामने आईं। इन सशस्त्र काण्डो की चरम परिणति हुई चटगाव अस्त्रागार की लूट के काण्ड मे।

फिर १९४२ का 'करो या मरो' आन्दोलन चला। अगस्त क्रान्ति की उस महत्ता से कैसे इन्कार किया जा सकता है।

पर सुभाष बोस के नेतृत्व मे आजाद हिन्द फौज के इम्फाल और कोहिमा तक पहुचने की जो तीव्र प्रतिक्रिया भारतीय सैनिको मे और जनमानस मे दिखाई पडी, उसने अंग्रेज हवा का रुख पहचान गए और अन्त मे तेजी से बदलते घटना-क्रम के अन्तर्गत १५ अगस्त, सन् १९४७ को वे भारत छोडकर चले गए।

प्लासी की लडाई बगभूमि मे हुई जिससे भारत की पराधीनता प्रारम्भ हुई। सन् १८५७ के गदर की शुरुआत बगभूमि (बैरकपुर) से हुई। नोआखाली काण्ड भी बगभूमि मे हुआ जिसके कारण पाकिस्तान बना। यही बगभूमि पराधीनता और पराजय के कलक को मिटाने के लिए लगातार डेढ सौ साल तक सशस्त्र सघर्ष की हरावल करती रही। पाकिस्तान के विघटन की शुरुआत भी इसी बगला देश से हुई। अब क्या भविष्य के गर्भ मे कुछ और भी है जिसका परीक्षण आग की लपटो से घिरे बगला देश मे चल रहा है? क्या इस समय महादेश को पुन एकसूत्र मे बाधने की प्रक्रिया इसी भूमि से प्रारम्भ होगी?

१४

स्वप्न की मंज़िल

सारा रगामाटी पानी की एक विशाल झील मे डूबा है—नील जल का विस्तार दृष्टि के क्षितिज को बाध लेता है। कप्ताई मे कर्णफूली नदी पर बाध बनाने के लिए रगामाटी का हो गया बलिदान। जहा पहले जगल और मैदान था, वहा अब पानी ही पानी है। रगामाटी की बस्ती रह गई है केवल सडक के किनारे-किनारे और झील के एक सिरे पर।

बाजार मे पैठ का दिन है, इसलिए आदिवासी स्त्री-पुरुषो की खूब भीड है।

कुछ दुकानें मारवाडियो की भी हैं। धोती पहने भी दो-तीन व्यक्ति दिखाई दे जाते हैं।

एक जगह बोर्ड दिखाई दिया—'जीवक औषधालय'। वैद्यराज का नाम रवीन्द्रनाथ राय। वैद्यराज धोतीधारी हैं, पर उनके ग्राहको मे कोई धोती-धारी नजर नही आता।

हिम्मत करके दुकान के अन्दर घुसकर पूछता हू—"राजबाडी और आर्ट म्यूजियम किधर है ?"

"यहा से लगभग ४-५ मील होगा।"

"जाने का साधन ?"

"नाव से जा सकते हैं, या स्कूटर से।"

हा, रगामाटी मे कुछ स्कूटर भी चलते दिखाई दिए।

एक स्कूटर किया। उसने बस्ती से लगभग ५ मील दूर जाकर सडक पर ही मुझे उतार दिया और जगल की एक पगडण्डी की ओर इशारा करके कहा कि यही राजवाडी का रास्ता है।

मैं ठिठकता हू। वन की सुनसान पगडण्डी पर एकाकी जाने मे यही

कोई खतरा तो नही ?

पर पूछू किससे ? आसपास कोई दिखाई नही देता ।

इतनी दूर आया हू तो अब वापस नही लौटूगा ।

वापस जाने का साधन भी नही है । स्कूटर वाला जा चुका है ।

वन-पथ पर बढ चलता हू ।

रास्ते की वीरानी दहशत पैदा करती है ।

कही कोई जगली जानवर···या कोई असामाजिक प्राणी···इस एकान्त का लाभ उठा ले तो ससार मे कोई जान भी नही पाएगा कि एक पत्रकार कभी इस पगडडी पर जा रहा था ।

सर्दियो की धूप का सुनहरा दिन है । अज्ञात का आकर्षण खीचे लिए जा रहा है ।

जगल घना होता जाता है ।

खतरे की सभावना और बढती जाती है ।

अपने आख-कान चौकन्ने रख मैं एकाकी आगे बढता जाता हू ।

चलना ही धर्म है । 'उस पार' का रहस्य पाए बिना मजिल नही मिलेगी ।

ऊचे-ऊचे बासो के जगल मे से गुजरती पगडण्डी अचानक खत्म । आगे पानी ही पानी ।

अब ?

पगडण्डी जहा खत्म हो रही थी वही एक ओर छोटी-सी झोपडी दिखी ।

झोपडी मे से एक वृद्धा निकली ।

पानी मे छोटी-सी नाव पडी थी जिसे एक आदमी आसानी से चला सकता था । बुढ़िया ने चप्पू सभाला और मुझे नाव मे बैठने का इशारा किया । नाव चल पडी ।

पानी के पार सामने पहाडी थी ।

'राजबाडी' ?—मैने पूछा ।

बुढिया ने पहाडी की ओर इशारा किया और नाव लेकर वापस लौट पडी ।

मैं पहाडी पर चढने लगा ।

पहाडी बहुत ऊची नही थी । ऊपर पहुचने पर समतल मैदान, वृक्षो या

कुज और वातावरण मे स्निग्ध शान्ति।

मध्याह्न की वेला थी। भिक्षु अपने-अपने पात्र लेकर भोजनागार मे जमा हो रहे थे।

गौराभ वर्ण, सुन्दर आकृति और परिपुष्ट देह।

भिक्षु के वेश मे और प्रलोभनीय शरीर की गठन वाले किशोरो और तरुणो का भोजनागार मे एकत्र देखकर आखें जुडा गई।

अजनबी को आया जानकर एक तरुण भिक्षु, जो शिक्षित था और शिष्ट व्यवहार मे पटु था, पास आया।

"कहा से आए है ?"

'परदेसी पर्यटक हू। राजबाडी देखने आया हू।"

तरुण अपने प्रधान भिक्षु के पास ले गया।

वे वृद्ध थे और एक आराम कुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे।

शायद अपने एकान्त विश्राम के क्षणो मे खलल से कुछ खिन्न हुए हो। पर परदेशी पर्यटक से वार्तालाप किए बिना गति नही।

पता लगा, ये सब चकमा लोग है, इस प्रदेश के मूल निवासी ही नही, यहा के कभी पट्टाभिषिक्त राजा के सजातीय भी।

चकमा राजा भुवनचन्द्र मोहन का सन् १८३६ मे अभिषेक हुआ था, जिसका साक्षी एक शिलालेख अभी तक वहा राजा की आवक्ष प्रतिमा के साथ ही लगा है। उस बात को भी अब १३६ वर्ष होते है। उनके पुत्र हुए नलिनाक्षराय जिनकी तस्वीर मैंने म्यूजियम के द्वार पर लगी देखी थी। उसके बाद, लगता है, कि अंग्रेजो ने रगामाटी की इस चकमा रियासत का खत्म करके अपने राज्य मे मिला लिया और उसका स्वतत्र अस्तित्व समाप्त हो गया।

'राजप्रासाद कहा है ?"—मैंने पूछा।

वृद्ध भिक्षु ने कहा—"वह तो कभी का गिर चुका है। अब तो यहा बौद्ध भिक्षुओ का विहार है और इस विहार का नाम ही राज विहार है।

"राजबाडी किस स्थान का नाम है ?"

'राजबाडी भी इसी स्थान को कहते है। कभी यहा राजा की बाडी (निवासस्थान) थी न। अब तो यह भिक्षुओ की बाडी है। रगामाटी म यही

विहार सबसे पुराना और सबसे प्रमुख है।"

"यहा कितने भिक्षु रहते हैं ?"

"अस्सी।"

"उनकी दिनचर्या ?"

"यही पूजा-पाठ, धार्मिक ग्रन्थो का स्वाध्याय और तपस्या।"

बगला देश के, और खासकर इस प्रदेश के, विप्लवी स्वरूप का और सशस्त्र क्रान्तियो मे इस प्रदेश की भूमिका का, मुझे ध्यान था, पर बौद्ध भिक्षु से उस प्रकार की बात करना, सो भी प्रथम वार्तालाप मे ही, असगत होता इसलिए मैं चकमा लोगो के ही इतिहास और सगठन आदि के बारे मे बातें करता रहा।

पता लगा कि इस शूरवीर जाति के लोगो की सख्या ६ लाख से कम नही है। ये बगला देश, त्रिपुरा, अरुणाचल और मिजोरम से लेकर बर्मा के सीमान्त तक फैले हुए हैं। कुछ शिक्षित चकमा ईसाईमत की शरण मे भी गए हैं, पर प्रधान भिक्षु का दावा था कि आजादी के बाद वे सब वापस बौद्धधर्म अगीकार कर रहे हैं।

यह शूरवीर जाति यदि सगठित हो सके तो चीन के प्रसारवादी कम्युनिज्म के विरोध मे और इस्लाम के नाम पर धर्मान्धता तथा असामाजिकता को प्रश्रय देने वाले तत्वो के विरोध मे बडा उपयोगी हथियार सिद्ध हो सकती है।

चकमा राजा का प्रासाद तो गिर चुका, पर उस समय का एक पूजागृह अभी तक विद्यमान है। मन्दिर की छत एक ओर से टूट रही है। कुछ दीवारें भी जीर्णता की ओर अग्रसर है, पर मन्दिर के बीच मे भगवान बुद्ध की पीतल की विशाल प्रतिमा ज्यो की त्यो है। प्रतिमा की भव्यता का क्या कहना ? और जब एक ओर से मध्याह्नोत्तर सूर्य का प्रकाश झरोखे से छनकर प्रतिमा पर पडता है, तो वह अपनी दीप्ति मे स्वर्ण को भी लजा देती है।

एक 'सदेशना हाल' बना हुआ है जो सम्मिलित प्रार्थना और उपदेश के काम आता है। बरसात मे बौद्धभिक्षुओ को चहल कदमी मे कठिनाई न हो, इसके लिए 'चक्रमण हाल' की व्यवस्था एक नया 'आइडिया' लगा।

पता लगा कि पास ही, दूसरी पहाडी पर, एक विहार और भी है। राज-विहार वाले उस दूसरे विहार का उल्लेख करने म सकोच अनुभव कर रहे थे। दोनो म प्रतिद्वन्द्विता रही होगी। फिर यह राज विहार पुराना, मान्यता प्राप्त। किसी दूसरे विहार को अपने यश का कुछ हिस्सा छीनते कैसे बर्दाश्त करे। पर जब मैंने चकमा लोगो की आदिवासी कलाकृतियो और इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से म्यूजियम के बारे म आग्रह करके पूछा, तब अनिच्छापूवक उन्होने दूसरी पहाडी की ओर सकेत कर दिया, जहा म्यूजियम के साथ वह नया विहार भी बना हुआ था। यह राज-विहार था, तो दूसरे विहार का नाम था वन-विहार।

इस पहाडी के चारो ओर पानी था। दूसरी पहाडी के चारो ओर भी पानी था। समुद्र के दो टापुओ की तरह दोनो पहाडिया आमने-सामने झील के पानी म खडी थी।

दोनो पहाडिया के बीच मे जलधारा को पार करने के लिए बास का पुल बना था। सर्वथा जीर्णशीर्ण। दोनो विहार अपने अलग-अलग वन-पथो की वीथियो से सडक से जुडे थे। इसलिए इन दोनो विहारो के मध्य पारस्परिक आवागमन नगण्य था।

मैं बास के पुल से दूसरी पहाडी की ओर बढा।

पुल जीर्णशीर्ण था ही। धोखा दे सकता है, इसकी कल्पना नही थी। अचानक एक बास पर पाव पडते ही उसने धोखा दे दिया।

मैं झील के पानी मे गडम।

निकट ही था कि पत्रकार-प्रवर को 'ऐडवेंचर' की आदत का पुरस्कार मिल जाता और इस अज्ञात स्थान पर उसे सहज जल समाधि सुलभ हो जाती।

पर जन्मपत्री के ग्रह अभी इतने प्रतिकूल नही हुए थे।

अचानक एक दूसरा बास हाथ मे आ गया। यह इतना कमजोर नही था। एकान्त जल-समाधि वेला को उसी बास ने टाल दिया।

पुल के पार आकर थोडी देर तक डर के मारे कापता रहा। फिर हसरत-भरी निगाहा से उस बास को देखा जो मौके पर मेरी जीवन-नौका बन गया था।

शरीर को अपनी ही बाहों से सहलाता रहा कि सही-सलामत हू या नही।

फिर जूता, जुराब, पैण्ट सब उतार कर निचोडे। गनीमत थी कि कोट गीला होने से बच गया था। नही तो मुफलिसी मे और आटा गीला होने वाली बात हो जाती।

आध घण्टे तक अपने कपडे धूप मे फैलाये, उस एकान्त सुनसान वन्य वातावरण मे, टापू मे एकाकी राबिन्सन क्रूसो की तरह, मैं अपनी किस्मत पर हसता भी रहा, इतराता भी रहा और एकाकीपन के बोझ को सहता भी रहा।

अभी मरण-योग नही है।

मैं अमृत का प्याला पीकर आया हू—अमृत-पुत्र जो हू।

कपडे कुछ फरियाले हुए। गीली पैण्ट पहनकर ही पगडण्डी पर आगे बढ लिया। पर जूते अभी पहनने लायक नही हुए थे। उन्हे हाथ मे उठा लिया।

पावो के तलो पर पगडण्डी की ककरिया चुभने लगी। टहनियो के डठल भी। गनीमत थी कि आस-पास काटेदार पेड-पौधे नही थे। नही तो इस शेर के सच होने की नौबत आ जाती—

बला से पैर गर छिद गए, किसी के काम तो आए,
पडे ये खुश्क-लब काटे, जाने कबसे बियाबा मे॥

—पर खुश्क लबो को तर करने की खुशकिस्मती हरेक की किस्मत मे तो नही होती।

इसी अस्त-व्यस्त हालत मे वन-विहार पहुच गया।

जूते बाहर धूप मे सूखने के लिए रखे और इस विवशता की श्रद्धा के प्रतीकस्वरूप नगे पाव उनके सदेशना हाल मे कदम रखा।

प्रधान स्थविर का प्रवचन चल रहा था। सामने कुछ सफेद-पोश युवक बैठे थे जिनमे एकाध धोती पहने भी थे जिससे लगता था कि वे हिन्दू होंगे। प्रवचन समाप्ति पर था, या मेरे अकस्मात्-प्रवेश से बन्द हो गया था—नही कह सकता।

सबकी दृष्टि मुझपर पड़ी।

हाल खूब खुला था और हवादार भी। शायद विहार के स्थापकों का हृदय भी इतना ही खुला हो। पर एक अन्तर अवश्य देखा। राज-विहार मे कोई व्यक्ति सफेद कपड़ो मे नही था, सब पीत वस्त्रो मे थे, पर यहा वन-विहार मे प्रधान स्थविर को छोड़कर और कोई पीत वस्त्रधारी नही था, सब श्वेत वस्त्र पहने थे। क्या राज-विहार मे सब दीक्षाप्राप्त युवक ही थे? और यहा अदीक्षित भी आ सकते थे? कौन जाने!

मैंने प्रधान स्थविर को प्रणाम किया।

"कहा से आए हो?"—उन्होने पूछा।

"मलयेशिया से?"

"नाम?"

"अब्दुलकादिर।"

"बौद्ध धर्म के बारे मे कुछ जानकारी है?"

"जानकारी उतनी नही जितनी सहानुभूति है।"

फिर मैंने ही बात का रुख बदलने के लिए वहा की गतिविधियो के बारे मे पूछताछ शुरू कर दी।

राज-विहार जितना विस्तार वन-विहार का नही है। गतिविधिया भी सक्षिप्त है। मन्दिर और उसकी प्रतिमा भी उतनी भव्य नही है। जितनी भूमि है उसमे विहार की गतिविधियो के अमित विस्तार की गुजाइश है।

पास ही म्यूजियम है जो उस दिन रविवार होने के कारण बन्द था। म्यूजियम के बाहर अगल-बगल दो तोपे लगी थी। तोपें असली होने पर भी अब म्यूजियम की ही वस्तु थी।

एक ओर अहिंसा-सर्वस्व बौद्धधर्म के साधको का साधना-स्थल, यह विहार! और उसीकी बगल मे ये तोपें!

मुझे सन् १९६८ मे आए स्वप्न के उस मन्दिर की याद आ गई जिसमे दुर्गा की प्रतिमा के सामने एक पेटी मे नापाम बम का पाउडर रखा था और दूसरी पेटी मे अणुबम का एण्टीडोट।

सूर्यास्त से पहले ही मैं इस रहस्यलोक से निकल आया।

रंगामाटी से जब लौटकर चटगाव आ रहा था तब रास्ते में यही विचार मन में आता रहा कि क्या यही नही थी मेरे स्वप्न की मंजिल।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने जन्मदिन के सम्बन्ध में कभी एक कविता लिखी थी। वही कविता याद आ रही है—

प्रथम दिन के सूर्य ने
प्रश्न किया था
अस्तित्व के नये आविर्भाव से—
कौन हो तुम ?
मिला नही उत्तर,
वर्ष पर वर्ष बीत गए।
दिवस के अन्तिम सूर्य ने
शेष प्रश्न पूछा
पश्चिम पारावार के तीर पर
निस्तब्ध सांझ के समय—
कौन हो तुम ?
पाया नही उत्तर।

मुद्रक . शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, शाहदरा, दिल्ली
1176



क्षितीश



जन्म १० अक्तूबर, १९१७।

शिक्षा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी से वेदालकार तथा आगरा विश्व-विद्यालय से एम० ए०।

रुचि पयटन, लेखन, प्रवचन।

यात्रा कश्मीर से कन्याकुमारी और गोआ से मणिपुर तक। पाण्डिम शिखर-अभियान। कैलाश—मानसरोवर—पश्चिम तिब्बत, नेपाल, बंगला देश, मारीशस, हिमालय का विस्तृत भ्रमण।

प्रकाशित पुस्तकें : 'जेल यातना के छह मास'
'जातिभेद का अभिशाप'
'गाधी जी के हास्य-विनोद'

सम्प्रति : सहायक सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।